MAPA- 607

उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन (भाग- 1)

STATE ADMINISTRATION IN UTTARAKHAND

(Part- 1)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई-मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरजा प्रसाद पाण्डे निदेशक– समाज विज्ञान विद्या शाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल
प्रो0 एम0एम0 सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय , नैनीताल
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज अमरोहा	डॉ0 सूर्य भान सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्याल, हल्द्वानी, नैनीताल	
पाठ्यक्रम सम्पादन डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**पाठ्यक्रम संयोजन एंव सम्पादन** डॉ0 सूर्य भान सिंह (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) राजनीति विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डा0 भुवन तिवारी, सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान विभाग एम0बी0पी0जी, कालेज, हल्द्वानी	1,2,3,4
डा0 जाकिर हुसैन 181, चैसवानी टोला, ओल्ड सिटी, बरेली, यू0 पी0	5,6,7,8

प्रकाशन वर्ष- 2022

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण: 2022

प्रकाशक: निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

अनुक्रम

खण्ड- 1 उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन	
1. उत्तराखण्ड का इतिहास- प्रशासनिक सन्दर्भ में	1 – 12
2. उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासनः एक पारिस्थिकी विश्लेषण	13 – 21
3. केन्द्र राज्य सम्बन्ध: विधायी और प्रशासनिक	22 – 34
4. भारत में केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध- उत्तराखण्ड के वित्तीय संदर्भ में	35 – 44
खण्ड- 2 उत्तराखण्ड की प्रशासनिक संरचना	
5. राज्यपाल, मुख्यमंत्री	45 – 54
6. राज्य सचिवालय, मंत्रिमण्डलीय सचिवालय,मुख्य सचिव	55 – 64
7. राज्य योजना आयोग	65 – 72
8. राज्य में प्रशासनिक सुधार	73 – 84

इकाई- 1 उत्तराखण्ड का इतिहास- प्रशासनिक सन्दर्भ में

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास
    1.2.1 कुणिन्द राजवंश
    1.2.2 पौरव वंश
    1.2.3 कत्यूरी प्रशासन
    1.2.4 चंद वंश
    1.2.5 रैका वंश
    1.2.6 पंवार वंश
    1.2.7 गोरखा शासन
1.3 अंग्रेजी शासन
1.4 उत्तराखण्ड में ब्रिटिश राजतंत्र का उदय
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

उत्तराखण्ड आन्दोलन ही दुनियाँ का ऐसा पहला आन्दोलन है, जिसने गाँधीवादी सिद्धान्तों को सही मायने में आत्मसात किया है। पुलिस एवं प्रशासन की तरफ से इतनी हिंसा हुई पर प्रतिहिंसा की एक भी घटना आज तक देखने को नहीं मिली। गरीबी, विषमता, अभाव एवं शोषण की बुनियाद पर टिका यह एक अहिंसक आन्दोलन रहा। अभूतपूर्व धैर्य, आत्मसंयम और अनुशासन जिसकी खासियत रही। उत्तराखण्ड में विकास व प्रशासन का जो ढाँचा आज खड़ा है उसकी बुनियाद ब्रिटिश काल (सन् 1815 से 1947) में पड़ी थी। ब्रिटिश प्रशासकों ने विकास का जो ढाँचा उत्तराखण्ड में खड़ा किया था, उसमें यहाँ की जन और जमीनी सम्पदा से अधिक से अधिक राजस्व कमाने के साथ-साथ उत्तराखण्ड से लगी तिब्बत, नेपाल की सीमाओं को ध्यान में अधिक रखा गया था। कम्पनी राज के प्रथम कुमाऊँ कमिश्नर गार्डनर का कार्यकाल सन् 1815 से प्रारम्भ होता है। गार्डनर कुमाऊँ में मात्र 6 वर्ष तक रहा। इन वर्षों में उसने राजस्व, सामान्य प्रशासन, फौज, मजदूरी व्यवस्था और खाद्यान्न जैसे कार्यक्रमों की शुरूआत की। गार्डनर के बाद 20 वर्षों तक जार्ज विलियम ट्रेल ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। ट्रेल के कार्यकाल में वन प्रबन्ध, डाक व्यवस्था, ट्रेजरी व्यवस्था, जेल, चिकित्सालय, सड़कों व पुलों की व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था, कुलियों के उत्थान, भूमि बन्दोबस्त आदि प्रारम्भ हुए।

इन कार्यों के अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप तथा शराब की ब्रिक्री व्यवस्था कम्पनी शासन काल से प्रारम्भ हो गयी थी। कम्पनी की भूमि बन्दोबस्त, शराब व्यापार और वन व्यवस्था को लेकर लोग संतुष्ट नहीं थे।

आजादी के संग्राम में यहाँ के लोगों का बढ़-चढ़ कर भाग लेने के पीछे मुख्य कारण भूमि बन्दोबस्त और वन प्रबन्ध को लेकर उपजा असंतोष प्रमुख था। सन् 1815 में विकास का जो क्रम उत्तराखण्ड में प्रारम्भ हुआ था, आजादी के बाद उसी विकास व्यवस्था को आगे बढ़ाया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद उत्तराखण्ड की धरती पर जो सबसे बड़ा आन्दोलन हुआ, वो था उत्तराखण्ड राज्य की मांग। इस आन्दोलन ने जो गति पकड़ी वो राज्य बनने के बाद ही थमी। इस अध्याय में आगे हम राज्य के उन सभी पहलुओं पर चर्चा करेंगे जो राज्य के गठन के प्रमुख कारक रहे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- उत्तराखण्ड राज्य का प्राचीन राजनीतिक इतिहास क्या रहा, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- राज्य गठन से पूर्व प्रशासनिक संरचना क्या थी, इसे समझ पायेंगे।
- ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन के कारणों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड के प्रशासनिक संरचना का अध्ययन कर पायेंगे।

1.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास

अलबरूनी जैसे साहित्यकारों का यह आशयपूर्ण कथन है कि भारतीय इतिहास लेखन की कला से अनभिज्ञ हैं। इस अर्थ में यह उचित प्रतीत होता है कि भारतीय इतिहासकारों ने अपनी कृतियों में तत्कालीन घटनाक्रम का वर्णन तो किया है, लेकिन तिथिक्रम के सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकार मौन साधे रहे हैं। उत्तराखण्ड में कत्यूरी शासकों से पूर्व भी कई शासकों का वर्णन इतिहास में मिलता है। उत्तराखण्ड के शासकों का हम क्रमबद्ध अध्ययन कर उत्तराखण्ड के प्राचीन इतिहास को समझने का प्रयास करते हैं।

1.2.1 कुणिन्द राजवंश

कुणिन्द राजवंश उत्तराखण्ड में शासन करने वाले प्रारम्भिक राजवंशों में से है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। अष्टाध्यायी में पाणिनी के द्वारा भी कुणिन्द जनपद का उल्लेख किया जाना दर्शाता है कि चौथी, पाँचवी सदी ईसा पूर्व कुणिन्दों का अस्तित्व था। टाल्मी (87 ई0 से 165 ई0) के विवरण में भी कुणिन्दों का उल्लेख दर्शाता है कि कुणिन्द दूसरी सदी में भी अस्तित्ववान थे। कुणिन्दों से पूर्व उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचल में कई अन्य जातियों का शासन स्थापित हो चुका था, जिनमें किरात, खश, तगण, परतगण, अम्बस्ष्ट इत्यादि का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। कुणिन्दों का उत्तराखण्ड की भूमि में अस्तित्व महाभारत काल के प्रारम्भ (सम्भवतः1000 ई0पू0-900 ई0पू0) से दूसरी तीसरी शताब्दी तक ज्ञात होता है। कुणिन्दों के शासन काल को कुणिन्द जनपद में तीन काल खण्डों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथम काल- महाभारत काल से 5वीं-6वीं ई0 पू0, दूसरा काल- 5वीं-6वीं ई0 पू0 से 2-3 सदी ई0 पू0 तथा तीसरा काल- 2-3 ई0पू0 से 2-3 सदी ई0 तक।

प्रथम काल के सम्बन्ध में महाभारत से पर्याप्त सूचनाएं प्राप्त होती हैं। महाभारत में सुबाहु नामक जिस शक्तिशाली शासक का उल्लेख मिलता है वह कुणिन्द जाति से सम्बन्धित था। सुबाहु ने पांडवों के पक्ष में महाभारत युद्ध में भाग लिया था। इस काल के प्रारम्भ में कुणिन्द जनपद एक स्वतंत्र जनपद था। बाद में उसने पांडवों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। द्वितीय काल समस्त उत्तर-भारत के लिये एक संक्रमण काल था। इस काल में धार्मिक क्षेत्र में महान क्रान्तियां हुई। परिणाम स्वरूप महावीर तथा बुद्ध जैसे धर्मज्ञों द्वारा जैन एवं बौद्ध धर्म जैसे विचार प्रधान

धर्मों की स्थापना की गयी। कुणिन्द जनपद के तीसरे काल को कुणिन्दों के चर्मोत्कर्ष काल माना जा सकता है। मोर्य एवं शुंग शासन के ह्रास के कारण भारतवर्ष में केन्द्रीयकरण की प्रवृति नष्टप्रायः हो गयी थी। विकेन्द्रीकरण का प्रारम्भ हो गया था। सम्भवतः इसी विकेन्द्रीकरण का प्रभाव था कि कुणिन्द जनपद अपने उत्कर्ष की ओर बढ़ चला।

किसी भी राजवंश का काल जानने या किसी कालखण्ड का इतिहास जानने में मुद्राओं का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुणिन्द मुद्राएं खरोष्टी एवं ब्राह्मी लिपी में उत्कीर्ण हैं। इस काल की कुछ मुद्राएं अल्मोड़े जिले से प्राप्त हुयी हैं, जिन्हें कुणिन्द शासनकाल में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राओं के नाम से जाना जाता था। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित की गयी हैं। इनका वजन 119 ग्रेन से 327 ग्रेन है। ये मुद्राएं म-ग-ह-त-स, शिवदत्त, शिवपालित हरदत्त इत्यादि कुणिन्द शासकों द्वारा उत्कीण की गयी हैं। ये मुद्राएं ब्राह्मी लिपि से उत्कीर्ण हैं। इन मुद्राओं में वृत्त, कुबड़ा बैल, वेदी, छत्र, लम्बवत् रेखाएं, नंदीपाद, नाग, मानवमूर्ति इत्यादि का अंकन किया गया है। अन्य प्रकार की मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं, जोकि देहरादून, बेहट तथा भैड़ागांव से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में भानू एवं रावण का नाम उत्कीर्ण किया गया है। कई ऐसी मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं, जिस पर कोई नाम उत्कीर्ण नहीं है। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित हैं तथा इनमें ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया है। अब तक कुणिन्द काल की अनेक मुद्राएं भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में शासकों के नाम तथा उनकी उपाधियों का भी अंकन मिलता है। कई मुद्राएं तो ऐसी हैं जिनमें शासकों का नाम अंकित न होकर कुणिन्द इत्यादि शब्दों का अंकन किया गया है। कुणिन्द मुद्राओं से ज्ञात होता है कि कुणिन्द सत्ता स्वतंत्र रही होगी। किसी अन्य राज्य के अधीन नहीं रही होगी। कुणिन्द मुद्राओं से कुणिन्दों का अपने समकालीन अन्य गणराज्यों यथा यौद्येय तथा औदुम्बर से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार कुणिन्द मुद्राएं तत्कालीन राजनीतिक स्थिति, साम्राज्य विस्तार तथा कुणिन्द शासकों की नीति तथा स्थिति पर व्यापक रूपेण प्रकाश डालती है।

अभ्यास प्रश्न-1

1. कुणिन्द शासन में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राएं किस धातु से निर्मित की गयी थी?
2. अष्टाध्यायी की रचना किसने की?

1.2.2 पौरव वंश

अल्मोड़ा जनपद के तालेश्वर नामक स्थान से ताम्र एवं अष्टधातु के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख पौरव वंश से सम्बन्धित हैं। ये अभिलेख 1915 ई0 में प्राप्त हुए। पौरव वंश का उद्-भव हर्ष के पश्चात तथा कत्यूरी एवं कन्नौज के यशोवर्मा से पूर्व हुआ था। हर्ष ने 600 ई0 से 647 ई0 तक शासन किया था। जबकि डॉ0 आर0एस0त्रिपाठी कन्नौज के शासक यशोवर्मा का शासनकाल 725 ई0 से 752 ई0 मानते हैं। पौरव वंश की सत्ता 647 ई0 के पश्चात से प्रारम्भ होकर 725 ई0 के आसपास तक अस्तित्व में रही होगी। पौरव वंश के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले ताम्रपत्रों के अनुसार इस वंश की राजधानी ब्रह्मपुर थी। पौरव वंश का राज्य गढ़वाल से सम्बन्धित था। कनिंघम के मतानुसार, ब्रह्मपुर राज्य में अलकनन्दा और करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश वर्तमान गढ़वाल एवं कुमाऊँ सम्मिलित रहा होगा। इस प्रकार पौरव वंश की राजसत्ता सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में स्थापित थी। इसमें भाबर का क्षेत्र भी शामिल था।

पौरव वंशीय ताम्र अभिलेखों से इस वंश के शासन प्रबन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है। विद्वानों ने माना है कि इस वंश के अनेक पदाधिकारियों की समानता गुप्त व हर्ष के पदाधिकारियों से की जा सकती है। पौरव वंश चूंकि हर्ष का परवर्ती था। अतः पौरवों ने हर्ष की शासन व्यवस्था को अपनाया। पौरव शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। इसकी उपाधि महाराजाधिराज परम भट्टारक की थी। पौरव अपने को गौ ब्राह्मण हितैषी

कहलाना पंसन्द करते थे। वे दानी प्रवृति के थे। उनके अभिलेख उनके द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख करते हैं। वे निरंकुश नहीं थे।

शासन की सहायता हेतु मंत्री परिषद होती थी। मंत्रीपरिषद का कार्य शासक को विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में परामर्श देना होता था। परिषद की नियुक्ति शासन को चुस्त, दुरूस्त करने हेतु की जाती थी। मंत्री परिषद में अमात्य, बलाध्यक्ष, सन्धि विग्रहक, राजदौवारिक, कोटाधिकरण, कुमारमात्य, सर्व विषय प्रधान देव द्रोणाधिकृत तथा कारगिक इत्यादि अधिकारी सम्मिलित थे। राजा जिस स्थान पर परिवार के साथ रहता था, उसे कोट कहते थे। कोट का सुरक्षा प्रबन्ध कोटाधिकरण नामक अधिकारी के पास था, जिसका कार्य राज परिवार को सुरक्षा प्रदान करना था। राज देवारिक राजप्रसाद में आने-जाने वालों की देख-रेख करता था। कारगिक नामक अधिकारी राजाज्ञाओं को तथा शासन को की गयी प्रार्थनाओं को उनके गन्तव्य तक पहुँचाने का कार्य करता था। एक सुपकारपति नामक कर्मचारी होता था जो राजा के भोजनालय की व्यवस्था देखता था।

बालाध्यक्ष सैन्य प्रमुख था। सेना तीन भागों में विभक्त थी- गज, अश्व एवं पैदल जो सेनानायक के अधीन थे। इसके सेनानायक गजपति, अश्वपति जयनपति कहलाते थे। सन्धि विग्रहक युद्ध व संधि विभाग का प्रधान था। पौरव शासन प्रबन्ध में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा हेतु पुलिस विभाग की व्यवस्था थी। पौरव शासकों की आय का मुख्य श्रोत भूमि कर था। भूमिकर को भाग कहते थे। इसको वसूलने वाला अधिकारी भागिक कहलाता था। भूमिकर उपज का छठा भाग लिया जाता था। चूँकि हिमालय की घाटियों में बसा होने के कारण पौरव वंश खनिज, वन तथा औषधियों से भरा पड़ा था, अतः इनसे भी आय होती थी। भोटान्तिक व्यापार अवश्य ही राज्य की आय के लिये वृद्धिकारक रहा होगा। अभिलेखों में दिविरपति तथा कायस्थ का उल्लेख भी मिलता है। इनका कार्य राज्य की आय तथा भूमि सम्बन्धी सूचनाओं का आंकड़ा रखना था। इस काल में केदार एवं सारी नामक भूमि के दो वर्ग थे। केदार भूमि सिंचाई वाली भूमि कहलाती थी तथा सारी ऐसी भूमि थी जिसकी सिंचाई नहीं की जाती थी। भूमि नाप के लिये द्रोणवापम, खारीवापम तथा कुल्यवापम आदि विधियों का प्रचलन था। सम्पूर्ण भूमि शासक की थी, वह भूमि का दान व विक्रय कर सकता था। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि पौरव काल में उच्च प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित थी, उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पूर्व काल में स्थापित बड़े राजवंशों की प्रतिलिपि प्रतीत होती है। ऐसा स्वभावतः उचित भी था, क्योंकि मानव प्रवृति अपने से श्रेष्ठ की नकल की होती ही है।

अभ्यास प्रश्न- 2

3. पौरव वंश में सेना कितने भागों में विभक्त थी?
4. केदार भूमि से क्या क्या तात्पर्य है?

1.2.3 कत्यूरी वंश

उत्तराखण्ड में 750 ई0 के आस-पास तक नन्द, मौर्य, कुषाण, मौखरी, वर्धन व पौरव वंशों का प्रभुत्व रहा। 750 से 1223 ई0 तक कत्यूरी राजाओं का एक छत्र राज्य रहा। महापंडित राहुल सांकृत्यायन इस वंश का शासन काल 850 से 1060 ई0 तक मानते हैं। विक्रम की 11वीं सदी में उत्तराखण्ड पश्चिमी व पूर्वी दो प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित हुआ। लेकिन दोंनो पर ही कत्यूरी राजाओं का शासन बना रहा। उत्तराखण्ड भौगोलिक दृष्टि से एक स्वतंत्र इकाई होने के बाद भी उसके मध्य में स्थित नन्दा देवी हिमालय, बधाण, चांदपुर के पठार तथा रामगंगा-उपत्यका के घने वन उसे पश्चिमी व पूर्वी दो भागों में बांटते हैं। उत्तर में इन भागों के बीच आवागमन की सुविधा पिंडर-उपत्यका तक उतरने पर ही प्राप्त होती है। दक्षिणी भाग में भाबर, घने वन व हिंसक पशुओं से भरे वन आवागमन में बांधक रहे। इस प्राकृतिक बांधा के कारण जोशीमठ से पूरे उत्तराखण्ड का शासन करना कठिन हो रहा था। अतः प्रकृति के प्रकोप व प्रशासनिक कठिनाईयों से बचने तथा उत्तराखण्ड के पश्चिमी व पूर्वी भागों पर

सुदृण शासन रखने के लिये कत्यूरी नरेश नर सिंह देव ने चमोली जिले के जोशीमठ से बागेश्वर जनपद स्थित बैजनाथ में राजधानी स्थापित की थी। यह घटना सम्वत् 1057 विक्रमी (सन् 1000) की है। इससे उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग कमादेश (कुमाऊँ) पर शासन करना सरल हुआ। फलतः कत्यूरी नरेशों को सन् 1191 तक इस प्रदेश पर अपनी सत्ता बनाये रखने में सफलता मिली। किन्तु उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग केदार भूमि गढ़देश पर उनका शासन शिथिल हो गया।

कत्यूरी वंश के सम्बन्ध में ज्ञान कराने वाले प्रमुख साधन इस काल के अभिलेख हैं। इन अभिलेखों से कत्यूरी काल के केन्द्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासन के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। कत्यूरी शासन दो भागों में बंटा था-

1. **केन्द्रीय प्रशासन-** केन्द्रीय प्रशासन का प्रधान शासक होता था। कत्यूरी वंश के अधिकांश शासक परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण करते थे। उनकी अन्य उपाधियां परम माहेश्वर तथा परम ब्राहमण थी। परवर्ती कत्यूरी शासकों को छोड़कर सभी कत्यूरी शासक प्रजा हितेषी, विद्वानों के आश्रयदाता, दानी तथा धार्मिक प्रवृति के थे। उन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण किया तथा मंदिरों को अनेक ग्राम अग्रहार के रूप में भी दान दिये। अधिकतर कत्यूरी शासक शैव मतावलम्बी थे। परन्तु उन्होंने अन्य मतों या सम्प्रदायों को मानने वालों के साथ भेदभाव नहीं किया। उनके द्वारा वैष्णव मंदिरों को भी भूमि दान दी गयी। कत्यूरी काल में ब्राहमण धर्म को उत्ताखण्ड में व्यापक सम्मान मिला। कत्यूरी शासक अपने राजा का प्रशासन मंत्री परिषद के मंत्रियों तथा उच्च पदाधिकारियों द्वारा संचालित करते थे। कत्यूरी शासकों के अभिलेखों में मंत्रियों तथा पदाधिकारियों की एक लम्बी सूची उत्कीण मिलती है। इन मंत्रियों तथा पदिधिकारियों की नियुक्ति शासक द्वारा स्वयं की जाती थी। भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न मंत्री व अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। कत्यूरी काल के कुछ प्रमुख पदाधिकारियों के नाम निम्नलिखित थे- अमात्य, राजामात्य, महासंधिविग्रहाधिकृत, कुमारमात्य, महादानाक्षपटलाधिकृत, महादण्डनायक, महाप्रतिहार, महाराज प्रमातार, उपरिक, महाकर्ता, गौल्मिक एवं शौल्किक आदि। कत्यूरी वंश के शासकों ने 250 वर्षों से भी अधिक समय तक उत्तराखण्ड में शासन किया। कत्यूरी सेना चार भागों में विभक्त थी- पैदल, अश्व, हाथी तथा ऊँट। अन्तिम तीन सेनाओं के मुखिया अश्वबलाधिकृत, हस्तिबलाधिकृत, ऊष्टबलाधिकृत कहे जाते थे। इन तीनों का भी एक संयुक्त सर्वोच्च अधिकारी होता था, जिसे हस्त्यश्वोष्ट्रबलाधिकृत कहा जाता था। सेना का संचालन शासक द्वारा ही होता था। कत्यूरी सेना के हाथी एवं ऊँटों का प्रयोग तराई, भाबर के क्षेत्रों में ही होता था। प्रान्तपाल नामक एक अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है जो कि राज्य की सीमाओं की सुरक्षा करता था। नदी घाटों पर आवागमन की सुविधा कर वसूली तथा अवांछित व्यक्तियों के कार्यकलापों की देखरेख का कार्य तरपति नामक अधिकारी करता था। पुलिस अधिकारियों के अतिरिक्त दण्डिक, चाट, भाट आदि कर्मचारी भी थे। अपराधियों को धर पकड़ने वाला अधिकारी दोषापराधिक कहलाता था। गुप्तचर विभाग की व्यवस्था भी थी। इस विभाग का मुख्य अधिकारी दुःसाध्य साधनिक था। चोरोंद्धरणिक नाम अधिकारी भी होता था जो चोर, लुटेरों को पकड़ता था। इससे ज्ञात होता है कि कत्यूरी शासकों ने राज्य की आन्तरिक शान्ति एवं जनसुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखा। कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय कृषि था। भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख साधन था। भूमिकर के अतिरिक्त वन एवं खनिजों से भी कर लिया जाता था। प्रमावतार भूमि नाप करने वाला अधिकारी था। भूमि नापने हेतु द्रोणवापम तथा नालीवापम प्रणाली प्रचलित थी। भूमि के पट्टे या अभिलेख पट्टकोपचरिक नामक अधिकारी के पास रहते थे। कत्यूरी अभिलेखों ने उत्कीर्ण भोगपति, शौल्किक अधिकारी भोग शुल्क आदि करों को वसूला करते थे। कत्यूरी शासक के आय के अन्य श्रोत, वन खनिज तथा पशु थे। वनों की रक्षा के लिये खण्ड रक्ष तथा पशुओं के लिये गाय-भैंस अधिकारियों की

भी नियुक्ति की जाती थी। दान में दी गयी अग्रहार भूमि करमुक्त थी। भौटान्तिक व्यापार से भी कत्यूरी राज्य को अवश्य कुछ न कुछ आय होती होगी।

2. **प्रान्तीय प्रशासन-** कत्यूरी शासकों द्वारा उत्कीर्ण लेखों में उपरिक नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। इसकी समानता गुप्त कालीन प्रान्तपति से की जा सकती है। प्रान्तपति या उपरिक के अधीन अनेक आयुक्त होते थे जो प्रान्तीय प्रशासन की देखरेख करते थे। सम्भवतः इस काल में पूर्ववर्ती भारतीय साम्राज्यों की भांति प्रान्तों को भुक्ति कहा जाता था। कत्यूरी अभिलेखों में जय कुल भुक्ति का उल्लेख मिलता है। कत्यूरी वंश के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर, टंकणपुर, अन्तरागविषय तथा एशालविषय का उल्लेख मिलता है। जिससे सिद्ध होता है कि कत्यूरी प्रान्त अनेक विषयों में विभक्त था। राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्रामों में राज्य की ओर से महामनुष्यम् तथा मुकद्दम नामक अधिकारी नियुक्त किये गये थे।

अभ्यास प्रश्न- 3

5. कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय क्या था?
6. इस काल में राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी?

1.2.4 चंद वंश

चंद वंश उत्तराखण्ड के इतिहास का एक महत्वपूर्ण राजवंश था। इस वंश का प्रारम्भ 10वीं और 11वीं सदी से प्रारम्भ हो गया था तथा 18वीं सदी तक इसका अस्तित्व उत्तराखण्ड की धरती पर बना रहा। इस वंश का सबसे पुरातन अभिलेख 1317 ई0 में राजा अभय चंद द्वारा प्रचलित किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य पूर्ववर्ती चंद राजाओं के समय उत्कीर्ण किये गये अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख दानपात्रों के रूप में उत्कीर्ण किये गये हैं। चंद कालीन अभिलेखों के अतिरिक्त इस काल से सम्बन्धित अनेक मंदिर, महल, किले, नौले उत्तराखण्ड की भूमि में यत्र-तत्र प्राप्त हुए हैं। चंद वंश के शासन प्रबन्ध, वित्त व्यवस्था और सेना के सम्बन्ध में जानने के लिए इन बिन्दुओं पर विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **शासन प्रबन्ध-** चंद वंश पूर्वी उत्तराखण्ड का अंतिम क्षेत्रीय राजवंश था। इस वंश के पतन के पश्चात 132 वर्षों तक यहाँ विदेशी शासन रहा जो कि क्रमशः गोरखों तथा अंग्रेजों द्वारा स्थापित किया गया। चंद काल में प्रशासन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी राजा होता था। वह अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था, जिसकी सहायता से राजा के विभिन्न कार्य सम्पन्न किये जाते थे। चंद राजा वीर, साहसी, धैर्यवान, दानदाता, धार्मिक, विद्या प्रेमी, विद्वानों के आश्रयदाता होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक, कुशल राजनीतिज्ञ थे। चंद राजाओं ने शासन प्रबन्ध में सहायता हेतु अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति की। युवराज, मंत्री, दीवान, राजगुरू, राजपुरोहित, सेनापति, फौजदार, रसोई दरौगा, खजानची, ह्यूपाल काराखेड़ा, राजचेली(राजमहल की दासी) आदि अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहायता से चंद राजा अपनी प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करते थे। उन्होंने प्रशासनिक सुविधा हेतु प्रजा को कई भागों में विभाजित किया था, यथा चार बुढ़ा, पांच थोक, चार चौथानी, छः धरिया, बारह अधिकारी, पंचबिडिया, खतीमन ब्राहमण, पौरी पन्द्रह विश्वा। चंद काल में ग्रामों का प्रशासन ग्राम प्रधान के द्वारा चलाया जाता था। उसका कार्य भू-राजस्व वसूलना तथा ग्रामों की सुरक्षा प्रबन्ध की देख-रेख होता था। उसकी सहायता के लिये कोटाल तथा पहरी गांव की चौकीदारी करता था। पहरी निम्न जाती से सम्बन्धित होता था।
2. **आय के स्रोत-** राज्य की आय के मुख्य स्रोतों में भू-राजस्व प्रमुख था। भू-राजस्व भूमि के आधार पर निर्धारित किया जाता था। उपजाऊ भूमि पर अन्य भूमि की अपेक्षा अधिक कर लगाया जाता था। भूमि

कर कठोरता से वसूला जाता था। यद्यपि प्राकृतिक प्रकोपों का लाभ कृषकों को मिलता था। भू-राजस्व के अतिरिक्त चंद राज्य की आय के अन्य स्रोत राजाओं द्वारा प्रजा पर लगाये गये अन्य विभिन्न प्रकार के कर थे। यथा- झूलिया, सिरती बैकर, कूत, भेंट, घोड़ियालों, कुकरियालों, मांगाकरक, स्यूक गरखानेगी, भुकड़िया बाजदार बाजनियौ, चराई कर, गृह कर इत्यादि। इन करों के अतिरिक्त वन तथा खनिजों से सम्बन्धित कर भी आय के स्रोत थे। भोटान्तिक-तिब्बत व्यापार से भी चंदों को अच्छी आय प्राप्त होती थी।

3. **सेना-** चंद राज्य के पास शक्तिशाली सेना थी। सेना पैदल तथा घुड़सवारों से मिलकर बनी थी। सेना का मुख्य अधिकारी सेनापति होता था। सेनिकों व सेनाधिकारियों को उनका वेतन जागीर के रूप में दिया जाता था। अपनी शक्तिशाली सेना के कारण ही चन्द राजाओं ने पंवार, डोटी जैसे शत्रु राज्यों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की।
4. **लोकहितकारी कार्य-** चंद राजाओं ने लोकहितकारी कार्यों की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया। उन्होंने पेय जल हेतु अनेक नौलों का निर्माण कराया। मंदिरों का निमार्ण एवं पुर्ननिर्माण करवाया। फलदार बाग लगवाये। संस्कृत शिक्षा हेतु विद्यालय तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। विद्वानों को आश्रय दिया। मंदिरों को भू-दान दिया।

अभ्यास प्रश्न- 4

7. चन्द वंश का प्रारम्भ किस सदी से हुआ?
8. चंद काल में प्रशासन का मुख्य अधिकारी कौन होता था?
9. चंद काल में ग्रामों का प्रशासन किसके द्वारा होता था?

1.2.5 रैका वंश

कत्यूरी वंश की राजशक्ति कमजोर पड़ जाने के कारण एक शक्तिशाली शासक के अभाव में कत्यूरी वंश के सामन्तों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली तथा एक स्वतंत्र राजा की भांति अपनी अधिकृत क्षेत्र में राज्य करने लगे। सीरा व डोटी भी ऐसे ही क्षेत्रों में थे, जहाँ कत्यूरी वंश के सामन्तों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की। इन्हें कत्यूरियों की एक शाखा माना गया तथा रैका नाम से जाना गया। रैका वंश के इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले मुख्य स्रोत इस वंश से सम्बन्धित ताम्र अभिलेख तथा डोटी एवं सीरा से प्राप्त वंशावलियां हैं। रैका वंश के सम्बन्ध में रैकाओं द्वारा लिखित अभिलेख तथा चंद राजाओं के अभिलेख महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। सीरा तथा डोटी के रैका कत्यूरी शासकों की भांति ब्राहमण धर्म को मानने वाले थे।

1.2.6 पंवार वंश

मध्यकालीन उत्तराखण्ड के इतिहास में दो राजवंशो का स्थान महत्वपूर्ण है। पूर्वी उत्तराखण्ड का चंद वंश तथा पश्चिमी उत्तराखण्ड का पंवार वंश। कत्यूरी वंश के पतन के बाद कत्यूरी वंश के वंशजों ने अनेक स्थानों पर अपने-अपने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली। पश्चिमी उत्तराखण्ड में भी कत्यूरी राज्य-क्षेत्र अनेक छोट-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। ये छोटे-छोटे राज्य गढ़ कहलाने लगे। गढ़ उस समय संख्या में 52 थे। इनमें एका न था। ये छोटी-छोटी बातों के लिये लड़ते रहते थे। पंवार वंश के राजाओं के गढ़ का नाम चांदपुर था। पंवार राजा शक्तिशाली थे। इन्होंने अपनी शक्ति के बल पर समस्त गढ़ों को अपने अधीन कर लिया और एक गढ़ देश की स्थापना की। इसी गढ़ देश को गढ़वाल कहा जाता है। पश्चिमी राजाओं के दरबारी कवियों के अनुसार ये राजा चन्द्र वंश से सम्बन्धित थे। जबकि इस वंश के परवर्ती राजाओं ने अपने वंश को पंवार वंश कहा। विशेषकर राजा सुदर्शन शाह ने (1815-1859ई0) को अपने वंश को पंवार वंश कहा।

1. **पंवार वंशीय प्रशासन-** पंवार वंश के राजाओं ने जिस प्रकार पक्षी तिनका-तिनका कर घोंसले का निर्माण करते हैं, ठीक वैसे ही 52 गढ़ों को मिला कर पंवार राज्य का निर्माण किया। पंवार राज्य का प्रधान राजा होता था। वह समस्त भूमि, वन तथा खनिज का स्वामी समझा जाता था। वह भूमिदान कर सकता था। पंवार वंशी राजा निरंकुश नहीं थे। वे प्रजा की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करते थे। प्रजाहित का ध्यान रखते थे। विद्वानों तथा कलाकारों के संरक्षक भी थे। राजकार्यों में कार्य करने के लिये वे उच्च अधिकारियों की नियुक्ति भी करते थे। राजा द्वारा निम्न उच्चाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। यथा वजीर, दिवान, फौजदार, दफ्तरी, नेगी, धर्माधिकारी गोलदार, वकील इत्यादि।

   राजा के बाद सबसे शक्ति सम्पन्न अधिकारी मुख्तार होता था। वह वजीर या दीवान के समान था। शक्तिहीन राजाओं के काल में वह राज्य का सर्वेसर्वा बन जाता था। दफ्तरी का कार्यालय सचिवालय की भांति था। वह राज्य के कर्मचारियों की नियुक्ति, स्थानान्तरण, वेतन, पुरस्कार, दण्ड, जागीर आदि से सम्बन्धित होता था। वह राजा के आदेशों का प्रसार भी करता था। फौजदार सैनिक अधिकारी थे, जो परगनों में नियुक्त किये जाते थे। पंवार राज्य में नेगी भी उच्चाधिकारी होते थे। ये कुलीन परिवारों के प्रतिनिधि थे। राजा इनसे महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श लेता था। नेगी का पद वंशानुगत था। धर्माधिकारी धर्म विभाग का प्रधान था। वह वंशानुगत पद था। गोलदार का कार्य राज्य के प्रमुख स्थलों राजमहल राजकोष आदि की सुरक्षा करना था। वकील दूत का कार्य करते थे। इन अधिकारियों के अतिरिक्त अनेक कर्मचारी भी होते थे। यथा खवास-खवासिन(सेवक-सेविकाएं), चोपदार यह राजा के साथ चांदी का दण्ड लेकर चलता था। सोदी राजपरिवार के लिये भोजन की व्यवस्था करता था। चन्ड संदेशवाहक का कार्य करता था। उच्चपदाधिकारियों को वेतन, जागीर के रूप में दिया जाता था। दैनिक व्यय व कर्मचारियों को व्यय के लिये कुछ नकद राशि भी दी जाती थी। कुछ कर्मचारियों को प्रत्येक फसल के समय गांव से कुछ अन्न नाली(अनाज मापने का पात्र) के रूप में दिया जाता था।

2. **आय के स्रोत-** पंवार राज्य के आय का प्रमुख स्रोत कृषि से प्राप्त भू-राजस्व था। राजा को समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। किसी भी व्यक्ति को भूमि दान में दे सकता था। भूमि रौत, जागीर तथा संकल्प के द्वारा दान में दी जाती थी। रौत उस भूमि को कहा जाता था जो सैनिकों को युद्ध में वीरता तथा साहस दिखाने के लिये दी जाती थी। भूमि अनेक थातों में विभक्त थी। प्रत्येक थात, थातवान के अर्न्तगत आता था। वह एक जमींदार की भांति था। उसका कार्य अपनी थात का भू-राजस्व एकत्रित कर राजकोष में जमा करना था। खायकर एक प्रकार के स्थाई कृषक थे, जबकि सिरतान अस्थाई कृषक। ये जमींदार को भू-कर के अतिरिक्त समय-समय पर भेंट, दस्तूर तथा मिठाई के रूप में कर देते थे। भू-राजस्व की वसूली करने वाले अन्य अधिकारी थोकदार प्रधान तथा बूढ़ा थे। थोकदार परगनों से भू-राजस्व एकत्रित करते थे। प्रधान ग्रामों से राजस्व की वसूली करते थे। भोटान्तिक भू-राजस्व वसूली करने वाले अधिकारी को बूढ़ा कहा जाता था। थोकदार को समाणा नाम से भी जाना जाता था। सम्पूर्ण राज्य के भू-राजस्व के दस्तावेज तथा आंकड़े राज्य की राजधानी में दफ्तरी के पास रहते थे। भूमि नाप की इकाई नाली थी। भू-राजस्व की दर उपज के 1/3 भाग से 1/2 भाग तक थी। साधारण भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/3 भाग तथा उपजाऊ भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/2 भाग लिया जाता था। कुल 68 प्रकार के आय के अन्य स्रोत थे जिनमें से 36 कर थे तथा 32 देय।

   इस प्रकार पंवार राजाओं ने एक व्यवस्थित प्रशासन की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। निरन्तर युद्धों में उलझे रहने पर भी राज्य का प्रशासन सुचारू रूप से चलता रहता था।

अभ्यास प्रश्न- 5

10. पंवार वंश में खायकर किन्हें कहा जाता था?

11. पंवार वंश में भूमि नाप की इकाई क्या थी?

1.2.7 गोरखा शासन

गोरखा राज्य के उद्-भव से पूर्व नेपाल अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। यथा भाट गांव वेलपा, डूलू, डोटी, जुमला काठमांडू या कांतिपुर इत्यादि। इन राज्यों में किरात एवं वैश्य वंश के राजा राज्य करते थे। चंद राज्य पर आक्रमण के समय गोरखों का राजा रणबहादुर शाह(सन् 1777 से 1804ई0) था। इसके सत्ता प्राप्त करने तक गोरखा राज्य में नेपाल के अनेक छोटे-छोटे राज्यों का समावेश हो चुका था। एक शक्तिशाली गोरखा सेना का संगठन भी हो चुका था। सन् 1790 ई0 तक गोरखा राजा ने चंद राजा द्वारा पदच्युत हर्षदेव जोशी से भी समझौता कर उसे अपनी सहायता हेतु मना लिया। चंद राज्य पर विजय प्राप्त करने के पश्चात 1791ई0 में गोरखा सेना ने पंवार राज्य पर आक्रमण कर दिया। गोरखा सेना पंवार राज्य पर विजय बनाने की योजना बनाती, उसी समय चीन ने नेपाल पर आक्रमण किया। अतः गोरखा सेनापतियों ने पंवार राजा प्रद्युम्मन शाह से श्रीनगर की सन्धि कर ली। यह सन्धि सन् 1792 में हुई। सन्धि की शर्तानुसार पंवार राजा को नेपाल की अधीनता स्वीकार कर उसे कर देना था। सन् 1803 ई0 तक पंवार राज्य की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी। उसे प्राकृतिक प्रकोपों को भी सहना पड़ा। गोरखा सेना ने सुअवसर जान 1803 ई0 में पंवार राज्य में आक्रमण कर दिया और श्रीनगर पर अधिकार कर लिया।

1.2.7 गोरखा शासन

गोरखों का उत्तराखण्ड में शासन 1815 ई0 तक रहा। गोरखों ने उत्तराखण्ड को सैन्य शक्ति के द्वारा विजित किया था। अतः उनका प्रशासन भी सैन्य प्रशासन के द्वारा नियंत्रित होता था। फिर भी उन्होंने नेपाल तथा उत्तराखण्ड में प्रचलित शासन व्यवस्था के मिश्रित रूप को अपनाया। गोरखा शासन सैनिक शासन था। उसके सभी उत्तराधिकारी सेना सम्बन्धित होते थे। गोरखा सेना एक शक्तिशाली सेना थी। अपनी शक्ति के द्वारा ही उन्होंने विस्तृत भू-भाग पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। गोरखा सेना में प्रतिदिन परेड, उपस्थिति तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। सैनिक सामान्यतः एक वर्ष के लिये ही नियुक्त किये जाते थे। नियुक्ति काल में सैनिक जागरिया कहलाते थे। एक वर्ष बाद नई नियुक्तियां पुरानों के स्थान पर की जाती थी। जिन सैनिकों को एक वर्ष बाद परिवर्तित किया जाता था, इन्हें दो वर्षों तक सेना में नहीं लिया जाता था। ये सैनिक ढाकरिया कहलाते थे। आपात काल में इन्हें पुनः सैन्य सेवा में रख लिया जाता था। अस्थायी सेना में गोरखा लोंगो से भिन्न लोगों की नियुक्ति की जाती थी। गोरखा जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते थे, उन क्षेत्रों की जनता से भी सैनिकों की भर्ती कर लेते थे। सैनिक विजित क्षेत्र में शान्ति एवं सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देते थे। अस्थाई सेना से कभी उच्च एवं निम्न अधिकारी नहीं बनाया जाता था। गोरखा प्रशासन सैनिक प्रशासन था। अतः उसका न्याय प्रशासन भी सैनिक न्याय व्यवस्था पर आधारित था। मामलों की सुनवाई विचारी नामक अधिकारी द्वारा की जाती थी। विचारी की सहायता के लिये सेना होती थी। विचारी निरंकुश होता था। इस पर राजा के नियंत्रण की कोई व्यवस्था नहीं थी।

1. **आय के स्रोत-** गोरखा शासन के लिये मजबूत आर्थिक स्थिति का होना आवश्यक शर्त थी। गोरखा अधिकारी अधिकांशतः युद्धों में ही अपना समय व्यतीत करते थे। अतः उनके पास नई राजस्व नीति निर्मित करने का समय नहीं था। भू-राजस्व वसूलने वाले अधिकारी भी पूर्व काल की भांति रहे। राजस्व की वसूली में कमीण, सयाणा एवं ग्राम के प्रधान का महत्व बना रहा। भूमिकर का निर्धारण करते समय

कृषक के हित के बजाय सैनिकों के हित का ध्यान रखा जाता था। सैनिकों को वेतन देने के लिये मुख्य स्रोत भू-राजस्व ही था। जो लोग भूमि-कर देने में असमर्थ होते थे, उन्हें दास बना कर बेच दिया जाता था।

2. **अन्य स्रोत-** गोरखा शासकों द्वारा भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अनेक कर भी लिये जाते थे। पूर्व काल मे प्रचलित कर समाप्त कर दिये गये थे। इनके स्थान पर नये कर लगाये गये। कुछ प्रमुख कर निम्नलिखित थे- जैसे मौकर(गृहकर), बुनाई कर, घी कर, सलामी या नजराना जो उच्चाधिकारी को उपहार स्वरूप दिया जाता था। गोरखा शासन में लोगों को दास बना कर बेचा जाता था, जिसकी आय भी गोरखों की प्रमुख स्रोत थी। गोरखा शासन में उत्तराखण्ड के अनेक पुरूष-स्त्रियों को दास बना कर बेचा गया था।

इस प्रकार गोरखा शासन में सैनिक शासन होने के कारण गुणों की अपेक्षा दुर्गुण अधिक थे। गोरखा सैनिकों के अत्याचारों से जनता पीड़ित थी। सैनिक स्वयं लूटमार तथा व्यभिचार में लिप्त रहते थे। गोरखा शासन की न्याय तथा राजस्व व्यवस्था अन्यायपूर्ण थी।

अभ्यास प्रश्न- 6

12. गोरखा शासन किस प्रकार का शासन था?

13. गृहकर को गोरखा प्रशासन में क्या कहते थे?

1.3 अंग्रेजी शासन

अप्रेल 1815 ई0 में उत्तराखण्ड क्षेत्र के गोरखा प्रशासक चौतरिया बमशाह तथा अंग्रेजों के प्रतिनिधि ई0 गार्डनर द्वारा एक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये गये। इस प्रकार उत्तराखण्ड का राज्य भी अंग्रेजों के अन्तर्गत आ गया। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हो गया। उत्तराखण्ड एक बार फिर विदेशी शासकों के चंगुल में जा फंसा। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के दो भाग कर दिये। एक भाग को अन्य देशी रियासतों की भांति टेहरी रियासत के रूप में जाना गया। दूसरा भाग अंग्रेजी सरकार के अधीन हो गया। टेहरी रियासत पूर्व पंवार वंश के वंशजों के अधीन कर दी गयी। टेहरी रियासत की राजधानी टेहरी थी। टेहरी रियासत नाममात्र को पंवार वंश अधीन थी, उसका वास्तविक शासन तो अंग्रेजों के द्वारा ही चलाया जाता था। टेहरी रियासत का प्रथम राजा सुदर्शन शाह था। जिसने 1815ई0 से 1859 तक शासन किया। उसके वंशजों ने 1949 ई0 तक टेहरी रियासत में शासन किया। टेहरी रियासत में अंग्रेजी सरकार का एक ऐजेन्ट भी नियुक्त किया जाता था। प्रारम्भ में यह ऐजेन्ट कुमाऊँ का कमीश्नर होता था। परन्तु 1825 ई0 से 1842 ई0 तक देहरादून जिले के डिप्टी कमीश्नर को टेहरी रियासत में सरकार का ऐजेन्ट बनाया गया। परन्तु 1842 ई0 में पुनः कुमाऊँ कमीश्नर को यह जिम्मेदारी सौंपी गयी। टेहरी रियासत को 1937ई0 में पंजाब हिल स्टेट ऐजेन्सी के साथ संयुक्त कर दिया गया था। 1949 ई0 में टेहरी रियासत का भी अन्य भारतीय रियासतों की भांति विलीनीकरण कर दिया गया तथा टेहरी रियासत के राजा को पेन्शन दे दी गयी। टेहरी रियासत के अतिरिक्त सम्पूर्ण उत्तराखण्ड अंग्रेजों के द्वारा शासित किया गया। इसे प्रारम्भ में बंगाल प्रेसिडेन्सी से सम्बद्ध किया गया था। उत्तराखण्ड में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उसे कमीश्नरियों में बांटा गया था। कमीश्नरियों का प्रमुख कमीश्नर होता था। उसकी सहायता के लिये डिप्टी कमीश्नर, डिप्टी कलेक्टर, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी, थोकदार, प्रधान, सयाणा आदि अधिकारी होते थे। उत्तराखण्ड में कमीश्नर का पद एक शक्तिशाली पद था। उत्तराखण्ड के प्रारंभिक कमीश्नरों ने तो स्वतंत्र रूप से निरंकुश शासक की भांति राज्य किया। प्रारम्भ में उत्तराखण्ड एक जिला था, परन्तु 1839 ई0 में गढ़वाल जिले का निर्माण किया गया। इस प्रकार उत्तराखण्ड में दो जिले कुमाऊँ तथा गढ़वाल(ब्रिटिश) हो गये। कालान्तर में इनमें और वृद्धि की गयी। यथा तराई जिला सन् 1842 व नैनीताल जिला 1891। कुमाऊँ कमीश्नरी के प्रारम्भिक

कमीश्नर बहुत शक्तिशाली थे। हैनरी रैमजे तक यह स्थिति बनी रही। रैमजे के बाद कमीश्नरों की स्थिति पूर्व की भांति न रही, वह केवल प्रशासक बने रहे। इन्हें अनेक न्यायिक व प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। सन् 1815 ई0 से 1947 ई0 तक उत्तराखण्ड में अनेकों कमीश्नरों का प्रशासन रहा।

1.4 उत्तराखण्ड में ब्रिटिश राजतंत्र का उदय

उत्तराखण्ड में इस समय हैनरी रैमजे का शासन चल रहा था। सन् 1857 की क्रान्ति का प्रभाव अभी तक उत्तराखण्ड की धरती पर नहीं पड़ा था। इस पर अंग्रेजी प्रशासन सतर्क था। अपने प्रशासनिक क्षेत्र में उन्होंने मार्शल लॉ लगा दिया। उत्तराखण्ड के कुछ इलाकों में छोटी-छोटी घटनाएं घटित होने लगी। 17 सितम्बर 1857 में आन्दोलनकारियों द्वारा हल्द्वानी पर अधिकार कर लिया गया। परन्तु कैप्टन मैक्सवल ने उन्हें पराजित कर दिया। बाद में 16 अक्टूबर 1857 ई0 को आन्दोलनकारी हल्द्वानी पर पुनः अधिकार करने में सफल रहे। परन्तु इस बार फिर उन्हें अंग्रेजी सेना ने खदेड़ दिया। उत्तराखण्ड का पड़ोसी क्षेत्र बरेली 1857 ई0 में क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र रहा। सन् 1858 ई0 में भारत का शासन कम्पनी सरकार से जाता रहा। अब भारत ब्रिटिश सरकार के हाथों में प्रत्यक्ष रूप से आ गया। महारानी विक्टोरिया को भारत के साम्राज्ञी घोषित कर दिया गया। साथ में भारतवर्ष में सुशासन का आश्वासन भी दिया गया। इस प्रकार सन् 1858 ई0 से उत्तराखण्ड भी साम्राज्ञी के अधीन आ गया।

1.5 सारांश

उत्तराखण्ड की शासन व्यवस्था में यहाँ के शासकों की शासन व्यवस्था व उनकी प्रशासनिक संरचना का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। 5वीं सदी ईसा पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहाँ के सामाजिक ताने-बाने में अपना प्रभाव छोड़ा, जो आज भी हमें देखने को मिलता है। हमने अपने अध्ययन में पाया कि उत्तराखण्ड में प्रारम्भ के राजवंशों में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। कुणिन्द शासकों की सत्ता स्वतंत्र रही है। इसके बाद पौरव वंश का उल्लेख आता है। जिनकी प्रशासनिक व्यवस्था बहुत मजबूत थी। पौरव वंशीय शासक धार्मिक प्रवृति के थे तथा शासन को धार्मिक ग्रन्थों व स्मृतियों के अनुसार चलाने में विश्वास करते थे। उत्तराखण्ड के महत्वपूर्ण राजवंशों मे कत्यूरी शासन रहा है। कत्यूरी शासन सुव्यवस्थित व जनहितकारी थी। इसके बाद चंद, पंवार, गोरखा व अंग्रेजी शासन का प्रभाव उत्तराखण्ड में रहा जिसने उत्तराखण्ड की राजनीतिक चेतना को दिशा देने का काम किया।

1.6 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- प्रान्तों या प्रेदेशों के अधिकार में सत्ता का आवंटन करना, ग्रेन- वजन नापने की इकाई, भोटान्तिक व्यापार- भोटिया जनजाति के साथ होने वाला क्रय-विक्रय, अधिवेशन- सम्मेलन, उत्कीर्ण- उकेरे हुए या धातुओं में छपे हुए

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ताम्र धातु, **2.** पाणिनी, **3.** तीन, **4.** सिचाईं वाली भूमि, **5.** कृर्षि, **6.** ग्राम, **7.** 10वीं-11वीं सदी, **8.** राजा, **9.** ग्राम प्रधान, **10.** एक प्रकार के स्थाई कृषक, **11.** नाली, **12.** सैनिक शासन, 13. मौकर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड का इतिहास- शिव प्रसाद डबराल।
2. कुमाऊँ का इतिहास- बद्री दत्त पाण्डे।
3. पाणिनी कालीन भारतवर्ष- बासुदेव शरण अग्रवाल।
4. केदार खण्ड- शिवानंद नौटियाल।
5. कुमाऊँनी भाषा साहित्य - त्रिलोचन पाण्डे।

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गढ़वाल का इतिहास - पं0 हरिकृष्ण रतूड़ी।
2. स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊँ, गढ़वाल का योगदान- धर्मपाल सिंह मनराल।
3. उत्तराखण्डः इतिहास एवं संस्कृति- घनश्याम जोशी, चन्द्रशेखर दुम्का।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तराखण्ड के प्राचीन राजनैतिक इतिहास पर एक निबन्ध लिखिए।
2. उत्तराखण्ड में अंग्रेजी शासन के विकास और उसकी शासन प्रणाली को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 2 उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन- एक पारिस्थिकी विश्लेषण

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था
    2.2.1 तहसीलें
    2.2.2 कमीश्नर
    2.2.3 तहसीलदार
    2.2.4 कानूनगो
    2.2.5 पटवारी
    2.2.6 थोकदार, परगने और पट्टीयां
2.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढ़ाँचा
2.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना
    2.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी
    2.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिति
2.5 हिमालयी राज्यों की तुलना
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

पहली इकाई में हमने उत्तराखण्ड के प्रशासनिक इतिहास पर विस्तृत चर्चा की और उत्तराखण्ड के सभी राजवंशों व उनके प्रशासनिक संगठनों व उनके कार्य प्रणालियों को समझने का प्रयास किया। पिछली इकाई में हमने जाना कि उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। 5वीं सदी ईसा पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहाँ के सामाजिक ताने-बाने में अपना प्रभाव छोड़ा जो आज भी हमें देखने को मिलता है।

उत्तराखण्ड की पारिस्थिकी हिमालयी प्रर्वतन-प्रक्रिया के महत्वपूर्ण एवं अत्यन्त जटिल इतिहास को प्रस्तुत करती है। हिमालय की पारिस्थितिकी के अध्ययन को हिमालय से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। राज्य का प्रथक नियोजन व प्रबन्धन प्रशासनिक इकाई के गठन का सशक्त आधार है। उत्तराखण्ड राज्य के गठन की अवधारणा भी यही थी कि भौगोलिक क्षेत्रफल के आधार पर बड़े राज्यों में समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाता है। बड़े राज्य अपने जातीय-सांस्कृतिक समुदायों की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर पाते हैं। उत्तर-प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र अपने

आप में भाषा, संस्कृति सहित विभिन्न भौगोलिक विशिष्टताएं लिये हुए है। इसका समुचित प्रबन्ध अलग राज्य बनने से ही हो सकता था।

इस क्षेत्र की विषम भौगोलिक परिस्थिति को देखते हुए जिस प्रशासनिक ढाँचें को अंग्रेजी शासन ने बनाया और जो आज भी लगभग उसी तरह उत्तराखण्ड में लागू है। उस संरचना को भी हम इस अध्याय में अध्ययन करेंगे। अंग्रेजी शासन में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उत्तराखण्ड में छोटी सी प्रशासनिक इकाई का सृजन किया गया, उसे पटवारी हल्का कहा गया। जनता की सुविधा व प्रशासन की कुशलता के लिये पटवारी को राजस्व व पुलिस दोनों के अधिकार दिये गये। यह व्यवस्था आज भी पर्वतीय क्षेत्र में मौजूद है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ के लिये पूर्व से ही पृथक व्यवस्थाएं थीं। उत्तराखण्ड के इन सभी प्रशासनिक पहलूओं पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक संरचना के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक स्थिति क्या है, यह जान पायेंगे।
- राज्य की विशेष परिस्थितियाँ क्या हैं, जिस कारण ये भारत के अन्य राज्यों से भिन्न हैं। इसे जान पायेंगे।
- वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य की स्थिति के बारे में समझ पायेंगे।
- राज्य की प्रशासनिक ईकाइयाँ कौन-कौन सी हैं तथा वो अपना काम कैसे करती हैं, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड के प्रशासनिक तंत्र की कार्य प्रणाली के बारे में जान पायेंगे।

2.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था

ब्रिटिश काल में इस पर्वतीय राज्य को लेकर अंग्रेजों की नीति भिन्न थी। ट्रेल ने इस व्यवस्था पर विशेष टिप्पणी करते हुए कहा कि, ''इस प्रान्त में चोरी का नितान्त अभाव और लोगों की परम नैतिकता को देखते हुए किसी भी प्रकार की पुलिस व्यवस्था अनावश्यक समझी जायेगी।'' पर्वतीय क्षेत्र में पुलिस प्रशासन का दायित्व मुख्य रूप से पटवारी, पेशकार आदि राजस्व अधिकारियों के हाथों में छोड़ दिया गया। अपने कार्य में उन्हें थोकदार व प्रधानों से सहायता मिलती थी। कुमाऊँ कमिश्नर रैमजे ने इस व्यवस्था को संतोषजनक बताते हुए कहा कि, ''मैं समझता हूँ कि हमारा ग्रामीण पुलिस प्रशासन पूरे भारतवर्ष में सर्वोत्तम है। इसमें परिर्वतन करना समझदारी नहीं होगी। ग्रामीण पुलिस व्यवस्था बहुत कम खर्चीली है, क्योंकि सरकार को उस पर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता है (भाबर पुलिस को छोड़ कर) साथ ही वेतनभोगी पुलिसकर्मियों के खर्चे से होनी वाली चिन्ताएं और मुसीबतें भी यहाँ पर नहीं हैं। ये तथ्य उसके पक्ष में हैं।'' ये व्यवस्था आज भी अधिकांश पर्वतीय हिस्सों में लागू है। आज भी पर्वतीय क्षेत्रों में पटवारी संचालित पुलिस प्रशासन व्यवस्था है।

पुलिस प्रशासन के लिये समस्त कुमाऊँ जिला एक पुलिस अधीक्षक के अधीन था। उसकी सहायता के लिये सहायक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, इन्सपेक्टर और सब-इन्सपेक्टर होते थे। पुलिस चौकियाँ, हैड कान्सटेबल के अधीन होती थी। सन् 1838 में कुमाऊँ जिले का पुनर्गठन कर गढ़वाल और कुमाऊँ दो जिलों का निर्माण किया गया। उनके मुख्यालय क्रमशः श्रीनगर और अल्मोड़ा में स्थापित किये गये। गढ़वाल राज्य का वह भाग जो अंग्रेजों ने गढ़वाल नरेश से हस्तगत किया था, सन् 1815 में कुमाऊँ जिले का एक परगना बना दिया गया था। दोनों नवगठित

जिलों को सीनियर असिस्टेंट कमीश्नर के अधीन कर दिया गया। गढ़वाल जिले के मुख्यालय को सन् 1840 में श्रीनगर से पौढ़ी तब्दील कर दिया गया। सन् 1842 में भाबर और तराई क्षेत्र को, जिसे कि अच्छी पुलिस व्यवस्था के उदेश्य से कुमाऊँ जिले से अलग कर दिया गया था पुनः कुमाऊँ में शामिल कर दिया। सन् 1891 में कुमाऊँ जिले को अल्मोड़ा और नैनीताल दो जिलों में बांट दिया गया और इन नवगठित जिलों के प्रधान प्रशासक को डिप्टी कमीश्नर कहा गया। इस नये जिले के निर्माण का मुख्य कारण कुमाऊँ जिले का आकार घटा कर उसे प्रशासनिक दृष्टि से अधिक सुविधा जनक बनाना था। उत्तराखण्ड की प्रारम्भिक पुलिस व्यवस्था को समझने के लिए निम्नांकित व्यवस्थाओं का अध्ययन करते हैं-

2.2.1 तहसीलें

अंग्रेजी शासन काल में तहसील प्रशासनिक ढाँचें की एक महत्वपूर्ण इकाई थी। आरम्भ में कुमाऊँ जिले की सात तहसीलें अल्मोड़ा, काली कुमाऊँ, पाली-पछौं, कोटा, सीर, फल्दाकोट और रामनगर में स्थापित थी। गढ़वाल तब कुमाऊँ जिले का एक परगना था और सन् 1815 में वहाँ पर श्रीनगर और कैन्यूर(चाँदपुर) में दो तहसीलें थी। सन् 1823 में प्रशासनिक खर्चे में कमी करने के उदेश्य से कुमाऊँ जिलें में कुल चार तहसीलों का प्रावधान किया गया। हजूर और काली कुमाऊँ, कुमाऊँ क्षेत्र में और श्रीनगर और चाँदपुर गढ़वाल क्षेत्र में। इस प्रकार जिलों और तहसीलों के संगठन में समय-समय पर फेर बदल होते रहे।

2.2.2 कमिश्नर

अंग्रेजी शासन के दौरान कमिश्नर ही एक मात्र ऐसा अधिकारी था जो सरकार का प्रतिनिधित्व करता था। उसके कार्य में कानून व व्यवस्था, पुलिस, कारागार, न्यायिक कार्य, राजस्व, यातायात, उत्पाद शुल्क, वन, प्रशासन आदि शामिल थे। सन् 1894 तक उसे मृत्यु दण्ड देने का अधिकार भी था। सन् 1894 से 1914 तक कमिश्नर ने सेशन जज का कार्य भार भी सम्भाला और तभी वहाँ पर एक अलग अदालत की भी स्थापना हुई। धीरे-धीरे मैदानी प्रदेश के नियम भी वहाँ लागू हो गये। प्रशासन की दृष्टि से देहरादून को एक अलग श्रेणी में रखा गया था। सन् 1815 में उसे सहारनपुर जिले में शामिल किया गया था। सन् 1815 में देहरादून को कुमाऊँ के कमीश्नर के अधीन कर दिया गया, क्योंकि मैदानी क्षेत्रों के कायदे-कानून देहरादून के पर्वतीय लोगों के लिये अनुपयोगी थे। सुपरिन्टेंडेंट देहरादून उस समय जिले का सर्वोच्च अधिकारी था। 1 मई 1829 ई0 को देहरादून को मेरठ डिवीजन में शामिल कर दिया गया। सन् 1947 में सुपरिन्टेंडेंट का पदनाम जिला मजिस्ट्रेट अथवा कलेक्टर में बदल दिया गया। वो राजस्व और अन्य करों की वसूली और कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये उत्तरदायी था। कलेक्टर का दफ्तर कलक्ट्रेट कहलाता था, जो कि जिला मुख्यालय में स्थित होता था। कलक्ट्रेट में रिकार्ड रूम, कोर्ट स्टाफ, तहसील स्टाफ और लैन्ड रिकार्ड आफिस शामिल होते थे। ऑफिस सुपरिन्टेंडेंट सभी कर्मचारियों का मुखिया होता था। प्रशासन की यह पद्धति मामूली परिर्वतन के साथ आज भी लागू है।

2.2.3 तहसीलदार

जिलों को राजस्व वसूली के लिये तहसीलों में बाँटा गया। इसका कार्यभार तहसीलदार को सौंपा गया। तहसीलदार के दफ़्तर के मुख्य कर्मचारियों में मोहरिर माल, न्यायिक मोहरिर, अहलमद, नाजिर, अमीन और कुर्क अमीन शामिल थे। रजिस्ट्रार कानूनगो भूमि सम्बन्धी दस्तावेजों के संकलन और रखरखाव के लिये जिम्मेदार था। तहसील के प्रधान अधिकारी को सब-डिवीजनल आफिसर(एस0 डी0 ओ0) कहते थे। एस0 डी0 ओ0 को सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट(प्रथम श्रेणी) और असिस्टेंट कलेक्टर(प्रथम श्रेणी) भी कहते थे। एस0 डी0 ओ0 का कार्य शान्ति और व्यवस्था सम्बन्धी दायित्वों के अलावा राजस्व सम्बन्धी व अन्य आपराधिक मामले निपटाना, भूमि के नक्से व दस्तावेज तैयार करना तथा राजस्व का निर्धारण और वसूली करना था।

2.2.4 कानूनगो

कानूनगो राजस्व सम्बन्धी मामलों में परगने का सर्वोच्च अधिकारी होता था। परगना तहसील से छोटी प्रशासनिक इकाई थी। हालांकि अंग्रेजों के आने से पहले भी उत्तराखण्ड परगनों में विभक्त था। कानूनगो के पास पुलिस अधिकार होते थे। राजस्व भी उनके अधीन होती थी। इतिहास में इस बात की जानकारी भी मिलती है कि राजाओं के शासन काल में कानूनगों पद पर कुछ परिवारों का वंशानुगत अधिकार माना जाता था। आज कानूनगों पद पूर्ण रूप से सरकारी हो गया है जो राजकीय स्तर पर महत्वपूर्ण कार्यों को अपने अधिकारियों के निर्देशानुसार सम्पन्न करके अपना योगदान दे रहे हैं।

2.2.5 पटवारी

परगना कई पट्टियों में विभक्त होता था। उत्तराखण्ड में राजवंश काल में पट्टी एक प्रशासनिक इकाई थी। अंग्रेजी शासन काल में एक अंग्रेज अधिकारी वैकेट ने पटवारियों के लिये सुविधाजनक मण्डल या हल्का बनाने के उद्देश्य से इसका पुनर्गठन किया। पटवारी पट्टी का राजस्व अधिकारी था। उसे पुलिस के कुछ अधिकार भी सौंपे गये थे। पटवारी के दफ़्तर को पटवारी चौकी भी कहा जाता था। वहीं उसका निवास भी होता था। उसके क्षेत्र में यदि कोई आपराधिक घटना होती थी तो उसकी सूचना तुरन्त पटवारी को दी जाती थी। पटवारी पद की स्थापना सन् 1819 में कमीश्नर ट्रेल ने लिखवाड़ के स्थान पर की थी। लिखवाड़ पहले कानूनगो के सहायक के रूप में काम करते थे। हर पट्टी में कई गाँव होते थे। गाँवों के मुखिया को पधान अथवा मालगुजार कहते थे, जिसका कार्य राजस्व सम्बन्धी एवं पुलिस दायित्वों को निभाना होता था। जिसके बदले में उसे थोड़ी जमीन आवंटित की जाती थी, जिसे पधानचारी कहते थे। पधान एक सहायक को भी नियुक्ति देता था, जिसे कोतल कहते थे। आज भी उत्तराखण्ड में परगने पट्टियों में विभक्त हैं तथा पटवारी पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद है। वो राजस्व कार्यों के साथ-साथ पुलिस का काम भी उसी भाँति कर रहा है, जैसे अंग्रेजी शासन काल में कर रहा था।

2.2.6 थोकदार, परगने और पट्टीयां

थोकदार एक महत्वपूर्ण व्यक्ति रहा है। राजाओं के शासनकाल में थोकदार एक मंत्रीवर्गीय अधिकारी होता था। थोकदार सामान्यतः वंशागत होता था। थोकदार का कार्य पुलिस और प्रशासनिक दायित्व निभाना होता था। अंग्रेजों ने थोकदार व्यवस्था को उपयोगी बनाने के उद्देश्य से थोकदार पट्टा देने की प्रथा शुरू की, जिसमें थोकदार के अधीन आने वाले गाँव, उसके दायित्व व उसकी फीस का उल्लेख होता था। 'हक थोकदारी' और 'दस्तूर थोकदारी' ऐसे शुल्क थे जो गाँव के पधान थोकदारों को देते थे। थोकदारों को सयाना, कुमीन अथवा बूढ़ा कहा जाता था। सन् 1821 में राजस्व वसूली की जिम्मेदारी थोकदारों के बजाय मालगुजारों अथवा पधानों को दे दी गयी। सन् 1856 में उनके पुलिस अधिकार भी छीन लिये गये, परन्तु अंग्रेजी शासन के अन्त तक थोकदारों का पहाड़ी समाज में एक विशिष्ठ स्थान बना रहा।

उत्तराखण्ड के राजवंशीय काल में परगने और पट्टियाँ थीं, जिन्हें भली प्रकार से संगठित नहीं किया गया था। प्रशासनिक सुविधा के लिये सन् 1821 में उन्हें पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। परिणामस्वरूप कई पट्टियों का विलय कर दिया गया व कई परगनों को समाप्त कर दिया गया। कुमाऊँ क्षेत्र में परगनों की संख्या 19 से घटाकर 14 कर दी गयी। गढ़वाल क्षेत्र में यह संख्या 17 से घटाकर 12 कर दी गयी। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि उचित भूमि व्यवस्था के लिये अंग्रेजी सरकार ने सन् 1815 से 1928 के बीच गढ़वाल में 12 और कुमाऊँ में 10 बन्दोबस्त किये। टिहरी राज्य में इस प्रकार के 5 बन्दोबस्त किये गये। स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड क्षेत्र में केवल एक बन्दोबस्त हुआ है।

राजस्व प्रबन्ध के लिये अल्मोड़ा जिले के 12 परगनों को 4 तहसीलों में संगठित किया गया था। रानीखेत अथवा पल्ली तहसील, अल्मोड़ा, चम्पावत और पिथौरागढ़। जौहार, दर्मा, सीरा, सोर, अस्कोट के परगने तथा अठिगाँव बल्ला और अठिगाँव पल्ला परगनों के कुछ गाँवों को मिला कर सन् 1960 में पिथौरागढ़ जिला संगठित किया गया। इस नवनिर्मित जिले में 5 तहसीलों की व्यवस्था की गयी। मुनस्यारी, धारचूला, डीडीहाट, पिथौरागढ़ एवं चम्पावत।

नैनीताल जिले के राजस्व प्रबन्ध के लिये 4 परगनों को 6 तहसीलों में संगठित किया गया। नैनीताल, हल्द्वानी, किच्छा, बाजपुर, खटीमा और काशीपुर। सन् 1997 में तराई और भाबर के परगनों और काशीपुर पट्टी को मिला कर उधम सिंह नगर जिले का गठन किया गया। इस नवगठित जिले की 5 तहसीलों में काशीपुर, बाजपुर, रूद्रपुर, किच्छा और खटीमा शामिल हैं।

सन् 1823 में अंग्रेजों ने अपने अधीनस्थ गढ़वाल को 11 परगनों में संगठित किया व भाबर को इसका 12वाँ परगना बनाया। गढ़वाल जिले में राजस्व व्यवस्था के लिये 12 परगनों को चार तहसीलों में विभाजित किया गया था। पौढ़ी, लैन्सडाउन, थैलीसैण और कोटद्वार। टिहरी रियासत सन् 1949 में भारतीय संघ में शामिल हुयी। उसमें 11 परगने शामिल थे। राजस्व व्यवस्था के लिये इन परगनों को टेहरी, प्रतापनगर, देवप्रयाग तहसीलों में बाँटा गया। सन् 1960 में रवाई और उत्तरकाशी परगनों को मिला कर उत्तरकाशी जिले का निर्माण किया गया।

2.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढाँचा

आजादी के समय कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और गढ़वाल जिले थे। सन् 1949 में टेहरी रियासत को एक जिला बना कर कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिया गया। यह व्यवस्था सन् 1960 तक चली। उस दौरान चीन के साथ बिगड़ते सम्बन्धों के कारण सुरक्षा के दृष्टि से टेहरी, गढ़वाल और अल्मोड़ा के सीमान्त प्रदेशों को क्रमशः उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ जिलों में संगठित किया गया। इस प्रकार कुमाऊँ मण्डल में 7 जिले हो गये। जिलों की बढ़ती संख्या को देख कर सन् 1970 में गढ़वाल मण्डल की स्थापना की गयी। जिसमें उत्तरकाशी, चमोली, गढ़वाल और टेहरी जिले शामिल किये गये। सन् 1975 में देहरादून जिले को भी गढ़वाल मण्डल में मिला दिया गया। सन् 1997 में गढ़वाल, चमोली और टेहरी जिलों के कुछ भागों को मिला कर रूद्रप्रयाग जिले का गठन हुआ। इसे भी गढ़वाल मण्डल में शामिल किया गया। सन् 1970 में गढ़वाल मण्डल बन जाने के बाद कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ जिले रह गये। सन् 1996 में नैनीताल जिले का तराई प्रदेश जिला उधम सिंह नगर नाम से गठित कर दिया गया। कुछ समय बाद बागेश्वर व चम्पावत क्षेत्र भी जिले बना दिये गये। ये तीनों जिले भी कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिये गये।

2.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना

9 नवम्बर, सन् 2000 को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2000 के अन्तर्गत उत्तरांचल (वर्तमान में उत्तराखण्ड) राज्य को देश का 27वाँ राज्य बनाया गया। 13 पर्वतीय जिलों को इस राज्य में स्थान दिया गया। राज्य के प्रथम मुख्यमन्त्री नित्यानन्द स्वामी बनाये गए तथा प्रथम राज्यपाल श्री सुरजीत सिंह बरनाला थे।

संविधान के अनुच्छेद- 3 के अनुसार संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि यह राज्यों, जिसमें संघ राज्य क्षेत्र भी सम्मिलित है, के क्षेत्रों को मिलाकर नए राज्यों का निर्माण कर सकती है। संसद सामान्य बहुमत अथवा सामान्य संवैधानिक प्रक्रिया द्वारा नए राज्य का निर्माण, सीमा परिवर्तन या नाम बदल सकती है। लेकिन इससे पूर्व नए राज्य के निर्माण से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्राप्त होना चाहिए। राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्यों को विधेयक विचारार्थ भिजवाता है। राज्य का विधानमण्डल विधेयक पर विचार-विमर्श करके अपने सुझावों सहित

विधेयक को निर्धारित अवधि में वापस कर देता है। सुझावों को मानना संसद के लिए आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति द्वारा विचार-विमर्श की अवधि को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यदि राज्य इस विधेयक को निर्धारित अवधि में प्रेषित नहीं करता है, तो राष्ट्रपति विधेयक को संसद में ऐसे ही प्रस्तुत करवा सकता है। जम्मू-कश्मीर राज्य में इस आशय का विधेयक पारित होना अनिवार्य है।

2.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी

केन्द्र सरकार द्वारा उत्तराखण्ड को 1 अप्रेल, 2001 से विशेष राज्य का दर्जा प्रदान करने का निर्णय लिया गया। विशेष राज्य का दर्जा पाने वाले सभी 11 राज्य पर्वतीय राज्य हैं। विशेष श्रेणी का दर्जा प्राप्त राज्यों को केन्द्रीय सहायता एक विशेष रियायती पैमाने पर मिलती है। अब उत्तराखण्ड को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता में 90 प्रतिशत हिस्सा अनुदान का और 10 प्रतिशत ऋणों का है। जबकि अन्य राज्यों को मिलने वाली सहायता में अनुदान का भाग 70 प्रतिशत तथा ऋण का हिस्सा 30 प्रतिशत होता है। विशेष श्रेणी प्राप्त राज्यों को ये सुविधाएँ स्थायी रूप में जारी रहेंगी।

2.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिति

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्याधीन सेवाओं, शिक्षण संस्थाओं, सार्वजनिक उद्यमों, निगमों एवं स्वायत्तशासी संस्थाओं में आरक्षण हेतु शासनादेश जारी किया जिसके तहत अनुसूचित जाति 19 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति 04 प्रतिशत,अन्य पिछड़ा वर्ग 14 प्रतिशत तथा महिलाओं, भूतपूर्व सैनिकों, विकलांग व्यक्तियों तथा स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रितों को क्षैतिज आरक्षण अनुमन्य होगा, जिसमें भूतपूर्व सैनिक 02 प्रतिशत, विकलांग 03 प्रतिशत तथा स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रित 02 प्रतिशत।

आरक्षण के सम्बन्ध में स्थायी रूप से नीति का निर्धारण पृथक रूप से किया जाएगा। आरक्षण का लाभ उत्तराखण्ड के मूल निवासियों को ही प्राप्त होगा। मूल निवासी केवल उन्हीं व्यक्तियों को माना जाएगा जो कम से कम 15 वर्षों से राज्याधीन क्षेत्र में निवास कर रहे हैं।

विशेष श्रेणी प्राप्त राज्य हैं- असम सन् 1969, नागालैण्ड सन् 1969, जम्मू-कश्मीर सन् 1969, हिमाचल प्रदेश सन् 1971, मणिपुर सन् 1972, मेघालय सन् 1972, त्रिपुरा सन् 1972, सिक्किम सन् 1975, मिजोरम सन् 1975, अरूणान्चल प्रदेश सन् 1975 और उत्तराखण्ड सन् 2001 ।

2.5 हिमालयी राज्यों की तुलना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय आसाम भारत का केवल एकमात्र हिमालयी राज्य था। देश के शेष हिमालयी क्षेत्र कसी-न किसी राज्य/रियासतों का भाग थे। 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर के भारत में विलय होने के उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना था। जब भारत में विकास कार्यक्रम तथा पंचवर्षीय योजनाएँ क्रियान्वित हुई तो देखा गया कि मैदानी क्षेत्रों की तुलना में पर्वतीय क्षेत्र विकास दौड़ में कहीं अधिक पिछड़ रहे हैं। यह भी अनुभव किया जाने लगा कि मैदानी क्षेत्रों के साथ पर्वतीय क्षेत्रों का विकास भी सम्भव नहीं है तथा व्यावहारिक दृष्टि से पर्वतीय क्षेत्रों का विकास मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है, क्योंकि दोनों के विकास की मूल आवश्यकताएँ, प्राथमिकताएँ, आधार तथा मानक न केवल भिन्न हैं, बल्कि दोनों के विकास की आपसी समझ तथा अवधारणा भी भिन्न-भिन्न है। पर्वतीय क्षेत्रों के विकास की भिन्न अवधारणा का सबसे प्रमुख कारण उनकी भौगोलिक, आर्थिक एवं संसाधनिक संरचना का मैदानी भागों से भिन्न होना था। भाषायी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना इस भिन्न अवधारणा का एक महत्वपूर्ण कारण था। दूसरा महत्वपूर्ण कारण था, हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों को विकास के लिए एक भिन्न क्षेत्र अथवा 'विकास की एक भिन्न इकाई' के रूप में

स्वीकार किया जाना। इन्हें भारत की भिन्न सामाजिक-सांसकृतिक इकाइयों के रूप में भी चिन्हित किया गया था। इसी क्रम में पर्वतीय (हिमालयी) राज्यों की अवधारणा का जन्म और विकास हुआ। देश के अनेक बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, योजनाकारों और विभिन्न हिमालयी क्षेत्रों के निवासियों ने इस माँग को समय-समय पर आन्दोलनों के माध्यम से उठाया, फलतः हिमालयी राज्यों की अवधारणा ने मूर्त रूप ले लिया और वर्तमान समय के सभी हिमालयी राज्य अस्तित्व में आए। देखा जाए तो भारत के दक्षिण में भी पर्वतीय क्षेत्र हैं, पर वे न तो सांस्कृतिक रूप से भिन्न थे और न ही आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से ही। भारत में पर्वतीय राज्यों की अवधारणा मूलतः हिमालयी राज्यों की ही अवधारणा है। भारत में हिमालयी राज्यों के इतिहास क्रम को हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

1. स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सिर्फ आसाम ही देश का एकमात्र हिमालयी राज्य था।
2. 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर का भारत में विलय हुआ और उसके उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना।
3. सन् 1963 में नागालैण्ड राज्य का गठन किया गया, जो तदुपरान्त भारत का तीसरा हिमालयी राज्य बना।
4. जनवरी, 1971 में हिमालयी प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। इससे पूर्व में सन् 1966 में पंजाब के पहाड़ी भागों को भौगोलिक-सांस्कृतिक आधार पर हिमालयी प्रदेश में मिला दिया गया था।
5. सन् 1972 में त्रिपुरा तथा मणिपुर भी हिमालयी राज्यों के रूप में अस्तित्व में आए।
6. सन् 1972 में मेघालय एक नया पर्वतीय राज्य बनाया गया। इससे पूर्व सन् 1970 में आसाम के दो जिलों को राजनीतिक, भाषायी एवं समाजिक-सांस्कृतिक आधार पर उपरान्त का दर्जा दिया गया था।
7. सन् 1975 में सिक्किम अपनी इच्छा से भारतीय गणराज्य में शामिल हुआ। इस प्रकार एक नया हिमालयी राज्य अस्तित्व में आया।

9 नवम्बर, 2000 में उत्तराखण्ड को भारतीय गणराज्य का 27वाँ तथा 11वाँ हिमालयी राज्य बनाया गया है। वर्तमान समय में इन हिमालयी राज्यों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है-

राज्य निर्माण की अवधि	राज्य	विधायकों की संख्या	लोकसभा के सांसदों की संख्या	आरक्षित	
				एससी	एसटी
सन् 1947 से पूर्व	असम	126	14	02	01
सन् 1947	जम्मू-काश्मीर	87	06	-	-
सन् 1966	नागालैण्ड	60	01	-	-
सन् 1971	हिमांचल प्रदेश	68	04	-	-
सन् 1972	मणिपुर	60	02	01	-
सन् 1972	मेघालय	60	02	02	-
सन् 1972	त्रिपुरा	60	02	01	-
सन् 1975	सिक्किम	32	01	-	-
सन् 1978	मिजोरम	40	01	01	-
सन् 1987	अरूणांचल प्रदेश	40	02	02	-
सन् 2000	उत्तराखण्ड	70	05	-	01

हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में 11 राज्य बनाने के उपरान्त भी वर्तमान समय में फिर यह महसूस किया जाने लगा है कि देश के सामान्य भाग विकास और हिमालयी क्षेत्रों के विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं में भी अन्तर है।

विकास के सन्दर्भ में सभी हिमालयी राज्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न रहे हैं। हिमालयी राज्यों के पूर्ण विकास पर विमर्श के लिए एक नयी परिषद् के लिए 'हिमालयी विकास प्राधिकरण' की माँग की जाने लगी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. कुमाऊँ जिले को कुमाऊँ और गढ़वाल में कब बाँटा गया?
2. सन् 1838 में कुमाऊँ और गढ़वाल जिले का मुख्यालय कहाँ-कहाँ था?
3. तहसील के प्रधान अधिकारी को क्या कहते थे?
4. तहसील की छोटी प्रशासनिक इकाई को क्या कहा जाता था?
5. थोकदार को अन्य किन नामों से जाना जाता था?
6. उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा कब प्राप्त हुआ?
7. केन्द्रीय सहायता में कितना भाग अनुदान का होता है?
8. उत्तराखण्ड राज्य में लोक सभा की कितनी सीटें हैं?
9. हिमालयी राज्यों में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?
10. भारतीय गणराज्य में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमने ये जाना कि पर्वतीय जिलों में प्रशासन की एक अनोखी व्यवस्था थी, जो भारत में अन्य कहीं नहीं पायी जाती थी। पटवारी की पुलिस के रूप में कार्य करना यहाँ की सबसे अनूठी प्रणाली है। पटवारी, पट्टी का सबसे बड़ा प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्य करता है। यह प्रणाली अंग्रेजी शासन काल से आज भी जस की तस चली आ रही है। राजस्व कार्यों के अलावा राजस्व पुलिस की यह व्यवस्था केवल उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है। तहसीलदार, कानूनगो, परगनों के अधिकारी लगान व राजस्व के कार्यों के साथ-साथ न्याय का कार्य भी करते थे। यह परम्परा आज भी चली आ रही है। देश में स्वाधीनता के बाद शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये त्रिस्तरीय पंचायत प्रणाली का सुभारम्भ किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य है कि जनता हितकारी विकास कार्यों में स्वयं पहल करे। इस प्रणाली को स्वशासन के नाम से जाना जाता है। स्वशासन की इस प्रणाली ने उत्तराखण्ड राज्य में नये प्रशासकीय व्यवस्था को विस्तार देने का काम किया है।

2.7 शब्दावली

परगना- प्रशासन की छोटी इकाई, होरिजेंटल- क्षेतिज, लगान- एक प्रकार का कर, त्रिस्तरीय- तीन स्तर पर

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1838 में, **2.** अल्मोड़ा व श्रीनगर, **3.** एस0 डी0 ओ0, **4.** परगना, **5.** सयाना, कुमीन, बुढ़ा, **6.** 90 प्रतिशत **7.** 1अप्रैल 2001, **8.** पांच, **9.** 11वां, **10**. 27वां

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जे0 एच0 बैटन- आफिसीयल रिपोर्ट आन द प्राविन्स ऑफ कुमाऊँ।
2. एम0 एस0 बर्थवाल- गढ़वाल में कौन कहाँ।
3. एस0 पी0 डबराल- उत्तराखण्ड का इतिहास।

4. एस0 पी0 नैथानी- उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य और पर्यटन।

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. उमा प्रसाद थपलियाल- उत्तरांचल ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आयाम।
2. पी0 एस0 नयाल- स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊँ का योगदान।
3. बी0 डी0 पाण्डे- कुमाऊँ का इतिहास।
4. प्रो0 शेखर पाठक- संपादक, पहाड़ पत्रिका।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तराखण्ड में प्रारम्भिक पुलिस व्यवस्था का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. हिमालयी राज्यों के इतिहास पर एक निबन्ध लिखिये।

इकाई- 3 केन्द्र-राज्य सम्बन्ध- विधायी और प्रशासनिक

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन
3.3 विधायी सम्बन्ध
3.4 प्रशासनिक सम्बन्ध
3.5 अवशिष्ट शक्तियाँ
    3.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति
3.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना
    3.6.1 राज्यः विधायी संरचना
    3.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना) राज्यपाल
        3.6.2.1 राज्यपाल की स्थिति
        3.6.2.1 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
    3.6.3 राज्य मन्त्रिपरिषद्
        3.6.3.1 राज्य मन्त्रिपरिषद् का गठन
        3.6.3.2 राज्य मन्त्रिपरिषद् की कार्यकाल
    3.6.4 मन्त्रियों की नियुक्ति
    3.6.5 राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद् के मध्य सम्बन्ध
    3.6.6 मुख्यमंत्री की नियुक्ति
        3.6.6.1 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियां
        3.6.6.2 महाधिवक्ता
    3.6.7 शासन के विभाग एवं कार्यालय
    3.6.8 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने उत्तराखण्ड में प्रशासनिक इकाईयों का विस्तृत अध्ययन किया। जिससे हमने जाना कि उत्तराखण्ड में राजवंशीय काल व अंग्रेजी शासन काल में किस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाया गया था और कमिश्नरी से लेकर पटवारी तक किस प्रकार प्रशासनिक तंत्र कार्य करता था? इस पर विस्तृत चर्चा की गयी। इस इकाई में ये भी जाना गया कि उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक संरचना क्या है और वह कैसे काम कर

रही है तथा इस बात का भी अध्ययन किया गया कि आज भी बहुत सी प्रशासनिक प्रणाली वैसे ही कार्य कर रही हैं जैसे कि अंग्रेजी या राजवंशीय शासन काल में करती थी। अब हम इकाई तीन में राज्यों का केन्द्र के साथ सम्बन्धों की चर्चा करने जा रहे हैं।

भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है। परन्तु उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। कुछ आलोचक हालांकि यह कहते नहीं चूकते कि केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण जिस आधार पर किया गया है, उससे राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं की भाँति हो गयी है। आलोचक चाहे कुछ भी कहें, भारतीय संविधान ने केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण कर दोनों को मजबूती देने का प्रयास किया है। हमारे संविधान के अनुच्छेद-1 में भारत को ''राज्यों का संघ'' कहा गया है। भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है परन्तु निश्चय ही उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। भारत वास्तव में एक संघ है, यद्यपि यहाँ केन्द्र अन्य संघीय देशों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम संघ और राज्यों के आपसी सम्बन्धों की समीक्षा करे। भारत इस समय कठिन दौर से गुजर रहा है। केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के संवैधानिक विभाजन के अतिरिक्त केन्द्र राज्य का एक विशिष्ट लक्षण है- केन्द्र राज्य सम्बन्धों को निर्धारित करने वाला अतिरिक्त संवैधानिक तत्व। इन सभी तत्वों व संविधान द्वारा दिये गये प्रावधानों का हम इस इकाई अध्ययन करेंगे तथा केन्द्र और राज्य के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को भी जानने का प्रयास करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- केन्द्र और राज्य कैसे काम करते हैं, इसे जान पायेंगे।
- केन्द्र और राज्य सम्बन्धों की संवैधानिक व्यवस्था और शक्तियों का आवंटन के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी प्रशासनिक सम्बन्ध के विषय में जान पायेंगे।
- केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध उत्तराखण्ड के परिपेक्ष में क्या रहे हैं, इसके सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- राज्य गठन से पूर्व केन्द्र की भूमिका व राज्य गठन के बाद केन्द्र की भूमिका को समझ पायेंगे।

3.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन

हम उपर चर्चा कर चुके हैं कि संविधान के अनुच्छेद-1 में कहा गया है कि ''इण्डिया अर्थात भारत राज्यों का संघ होगा।'' संघ तथा घटक इकाईयों के बीच सम्बन्धों की चर्चा संविधान के भाग-11, 12, 13 और 18 में पर्याप्त रूप से की गयी है। भाग-11 दो अध्यायों में विभाजित है। अध्याय-1 में विधायी शक्तियों और सम्बन्धों की (अनुच्छेद 245 से 363) चर्चा की गयी है। अध्याय- 2 प्रशासनिक सम्बन्धों से सम्बन्धित है। संविधान के अनुच्छेद- 256 से 263 तक इन सम्बन्धों के बारे में चर्चा की गयी है। भाग-12 में चार अध्याय हैं, जिनमें वित्तीय मामलों का वर्णन किया गया है। संविधान का भाग 18 संकटकालीन उपबन्धों से सम्बन्धित है। इन सम्बन्धों की चर्चा संविधान के अनुच्छेद- 352 से 360 में की गयी है। केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों को जानने के लिये दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को जानना अति-आवश्यक है।

3.3 विधायी सम्बन्ध

अनुच्छेद- 245 से 255 में संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का घोषणा-पत्र है। संसद भारत के समूचे राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकती है। केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी सम्बन्धों का संचालन तीन सूचियो संघ, राज्य व समवर्ती सूची के आधार पर होता है। इन सूचियों को संविधान की 7वीं अनुसूची में रखा गया है। किसी राज्य का विधानमण्डल समूचे राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकता है। राज्य की कोई विधि शून्य हो जाऐगी, यदि उसका राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन होता है। (कोचीन बनाम मद्रास राज्य, ए0आई0आर0 1960 एस0सी0 1080) और जब तक कि उद्देश्य तथा राज्य के बीच पर्याप्त सम्बन्ध नहीं दर्शाया जा सकता (बम्बई राज्य बनाम आर0एम0डी0सी0, ए0आई0आर0 1957, एस0सी0 699, टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी बनाम बिहार राज्य, ए0आई0आर0 1958, एस0सी0 452)। लेकिन संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के बारे में राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन के आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती (अनुच्छेद- 245)। संविधान की सातवीं अनुसूची में तीन सूचियां है अर्थात् संघ सूची, समवर्ती सूची और राज्य सूची, जिनमें क्रमशः 97, 52 और 66 मदें(विषय) हैं। अनुच्छेद- 246 में व्यवस्था है कि संघ सूची की मदों के बारे में संसद को विधियां बनाने की अनन्य अधिकारिता होगी, राज्य सूची की मदों में राज्य के विधानमण्डल को विधियां बनाने की अनन्य शक्तियां प्राप्त होगी और समवर्ती सूची में शामिल मदों में केन्द्र एवं राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार होगा। यदि समवर्ती सूची के मदों के बारे में संघ के संसद एवं राज्य के विधान मण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो उन परिस्थितियों में संघ के संसद द्वारा बनाई गई विधियां प्रभावी रहेंगी और राज्य की विधि उस विसंगति की मात्रा तक शून्य रहेगी, सिवाय उस स्थिति के जहाँ राज्य की विधि राष्ट्रपति के पर विचार हेतु आरक्षित रखी गई हो और उस पर उसकी सहमति मिल गई हो (अनुच्छेद- 245)। साथ ही संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह किसी अन्तर्राष्ट्रीय संधि, करार, अभिसमय अथवा विनिश्चय को कार्यरूप देने के लिए समूचे देश या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बना सके।

संघ सूची में ऐसे विषय शामिल हैं, जिनका सम्बन्ध संघ के सामान्य हित से है और जिनके बारे मे समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता अनिवार्य है। राज्य सूची में ऐसे विषय शामिल किये गये हैं, जो हित तथा व्यवहार की विविधता की छूट देते हैं। समवर्ती सूची में ऐसे विषय शामिल किये गये हैं जिनके बारे में समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता वांछनीय तो है पर अनिवार्य नहीं है, भले ही राज्य सूची में शामिल विषयों के बारे में राज्यों को अनन्य शक्तियां प्रदान की गई है। पर इस सामान्य नियम के दो अपवाद है। अनुच्छेद- 249 के अधीन यदि राज्य सभा के उपस्थित तथा मत देने वाले दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प के जरिए यह घोषणा कर दी जाए कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि राज्य सूची में शामिल किसी विषय के बारे में संसद विधियां बनाए तो समूचे भारत या उसके किसी भाग के लिए उस विषय के बारे में संसद विधियां बनाने के वास्ते सक्षम होगी। ऐसा संकल्प एक वर्ष तक वैध रहता है। उसकी अवधि को और एक वर्ष के लिए बाद के संकल्प द्वारा बढाया जा सकता है। ऐसे संकल्प के अधीन बनाई गई विधि संकल्प की अवधि बीत जाने के बाद 6 मास की समाप्ति के बाद प्रभावी नहीं रहेगी। पुनः अनुच्छेद- 250 के अधीन, जब आपात की घोषणा लागू हो तो संसद को अधिकार दिया गया है कि वह समूचे भारत या उसके किसी भाग के वास्ते राज्य सूची में शामिल किसी मद के लिए विधियां बना सकती है। ऐसी विधियों की वैधता की अधिकतम अवधि आपात की समाप्ति के बाद मास की होगी।

यदि अनुच्छेद- 249 तथा 250 के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधियां तथा राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी और राज्य की विधि विरोध की मात्रा तक शून्य होगी और संसद द्वारा बनाई गई विधि प्रभावी रहेगी। (अनुच्छेद- 251)

अनुच्छेद- 252 के अनुसार दो या दो अधिक राज्यों के विधानमण्डल एक संकल्प पारित करके संसद से अनुरोध कर सकते हैं कि वह राज्य सूची के किसी विषय के बारे में विधियां बनाए। ऐसी विधियों का विस्तार अन्य राज्यों पर किया जा सकता है, बशर्ते कि सम्बद्ध राज्यों के विधानमण्डल उस आशय के संकल्प पारित करें।

3.4 प्रशासनिक सम्बन्ध

संविधान के अनुच्छेद- 73 के अनुसार केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद- 162 के अनुसार राज्यों की शक्तियां उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानमण्डलों को कानून बनाने का अधिकार है। अनुच्छेद- 256 से अनुच्छेद- 265 तक संघ तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों के विनियमन की व्यवस्था करते है। संघात्मक प्रणालियों में सामान्यतया ऐसा होता है कि संघ तथा राज्यों के आपसी प्रशासनिक सम्बन्ध झमेलों से ग्रस्त रहते हैं। भारत के संविधान का उद्देश्य है कि दोनों स्तरों के बीच सम्बन्धों का निर्वाह सहज रूप से होता रहे। वह उपबंध करता है कि राज्य सरकार की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार हो कि संसद द्वारा बनाई गई विधियों का पालन सुनिश्चित हो सके। संघ की कार्यपालिका को राज्यों को ऐसे निर्देश देने का भी अधिकार प्राप्त है जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों।

इसी प्रकार अनुच्छेद- 257 का उपबंध है कि हर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाए कि वह संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में बाधक न हो। संघ इस सम्बन्ध में तथा रेलों के संरक्षण एवं राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार-साधनों को बनाए रखने के बारे में आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है। केन्द्रीय निर्देशों के पालन में जो अतिरिक्त व्यय राज्य करेगा, केन्द्र उसकी भरपाई राज्य को करेगा। अनुच्छेद- 261 का उपबंध निर्देश देता है कि भारतीय राज्य क्षेत्र के सभी भागों में संघ तथा राज्यों के सार्वजनिक कार्यों, अभिलेखों तथा न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास एवं पूरी मान्यता दी जाएगी। यह बात संघ एवं राज्यों के आपसी सम्बन्धों के सुचारू निर्वाह में अति सहायक होती है। अन्तर्राज्यिक नदियों पर संसदीय नियंत्रण तथा अंतर्राज्यिक जल-विवादों के न्याय-निर्णयन सम्बन्धी उपबंधों के कारण संघ तथा राज्यों के बीच तथा स्वयं राज्यों के बीच संघर्ष की ढेर सारी संभावनाएं समाप्त हो गई हैं (अनुच्छेद- 262)। वास्तविकता तो यह है कि संविधान-निर्माता किसी बात की सम्भावना नहीं छोड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने अन्तर्राज्यिक परिषदों की व्यवस्था की। अनुच्छेद- 263 राष्ट्रपति को अन्तर्राज्यिक परिषद की स्थापना का अधिकार प्रदान करता है। इन परिषदों को उद्देश्य है कि वे राज्यों के आपसी विवादों तथा राज्यों के या संघ एवं राज्यों के सामन्य हित के आपसी मामलों के बारे में जाँच करें और उन्हें सलाह दें तथा नीति एवं कार्यवाही के बेहतर समन्वय के बारे में सिफारिशें करे।

अनुच्छेद- 258 के अधीन राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से सम्बन्धित कृत्य सौंप सकेगा जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है। इसी प्रकार अनुच्छेद- 258 के अधीन किसी राज्य का राज्यपाल भारत सरकार की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से सम्बन्धित कृत्य सौंप सकेगा, जिन पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है।

प्रशासनिक सम्बन्धों के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार राज्यों पर आश्रित रहती है। प्रत्येक संघ में दो प्रकार की सेवाओं का प्रावधान होता है। प्रथम संघीय या केन्द्रीय सेवाएं व द्वितीय राज्य की सेवाएं। ये दोनों सेवाएं अपने-अपने क्षेत्र में

काम करती हैं। भारत में संघीय सेवाएं न होने के कारण उसे अपनी विधियों को लागू करने के लिये राज्य की सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में केवल अखिल भारतीय सेवाएं हैं।

3.5 अवशिष्ट शक्तियाँ

अवशिष्ट शक्तियाँ वे शक्तियाँ होती हैं,जिनका उल्लेख किसी भी सूची में नहीं होता। यह तथ्य है कि संविधान निर्माता चाहे कितने ही सावधान और सतर्क क्यों न रहें वे ऐसी व्यापक सूची नहीं बना सकते जिसमें समस्त शासकीय शक्तियां का स्पष्टतः उल्लेख कर दिया गया हो। वर्तमानकाल की परिर्वतनशील परिस्थितियों में नित्य नये विषय उत्पन्न होते रहते हैं। आज से दो पीढ़ी पूर्व कोई भी यह नहीं समझता था कि वायुपथ पर भी शासकीय नियंत्रण की आवश्यकता होगी। परन्तु विभागों के विकास और वायु यातायात के प्रसार के कारण वायुपथ पर सरकारी नियम होना आवश्यक ही नहीं वरन् परम आवश्यक हो गया है। अतः प्रत्येक संघीय संविधान की अवशिष्ट शक्तियों को संघ के किसी पक्ष को सौंप देता है। वर्तमान संघ राज्यों में से संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया के संविधान ऐसे हैं जो इकाईयों को अवशिष्ट शक्तियाँ प्रदान करते हैं, परन्तु कनाडा के संविधान में यह शक्ति केन्द्र सरकार को प्रदान की गयी है। यही शक्ति भारतीय संविधान द्वारा भी केन्द्र को सौंपी गयी है। संघ सूची में से किसी भी विषय पर संसद अतिरिक्त न्यायालय स्थापित कर सकती है। साथ ही संसद को यह अधिकार भी है कि किसी देश अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से की गई संधि, करार अथवा उपसंधि के क्रियान्वयन के लिये आवश्यक कानून बनाये। इन सब का प्रभाव है कि संघीय शासन, राज्यों की तुलना में सबल रहेगी।

3.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति

राज्य सूची में दिये गये विषयों पर राज्य विधानमण्डलों को विधि निर्माण करने को अनन्य अधिकार प्राप्त है। किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं। कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिये तथा कुछ विशेष अवस्थाओं में संघीय संसद उन विषयों पर भी विधि-निर्माण कर सकती है जो केवल राज्यों के क्षेत्राधिकार में है। इन विधि-निर्माण के क्षेत्रों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

1. यदि राज्य सभा उपस्थित व मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा यह प्रस्ताव पारित कर देती है कि वैसा करना राष्ट्रीय हित की दृष्टि से आवश्यक है तो संसद राज्य सूची में वर्णित किसी भी विषय पर विधि निर्माण कर सकती है। यह प्रस्ताव एक बार पारित हो जाने के उपरान्त एक वर्ष तक प्रभावी रहेगा, परन्तु राज्यसभा जितनी बार चाहे उसे पुनः पारित करके उसकी अवधि बढ़ाती रह सकती है। जब तक यह प्रस्ताव प्रभावी रहेगा, तब तक संसद उसमें वर्णित विषयों पर विधि निर्माण कर सकती है।
2. अनुच्छेद- 352 के अर्न्तगत राष्ट्रपति द्वारा की गयी आपातकालीन घोषणाओं के दौरान, राज्य सूची के किसी भी विषय पर समस्त भारत व उसके किसी भी भाग के लिये, संसद विधि निर्माण कर सकती है। आपातकालीन घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद ऐसी विधियाँ, उस मात्रा में जिसमें वे संसद के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों प्रभावहीन हो जायेंगी।
3. यदि किसी भी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था विफल हो जाती है तो राष्ट्रपति संवैधानिक विफलता से उत्पन्न आपात की घोषणा करके सम्बन्धित राज्य के लिये विधियाँ निर्मित करने की शक्ति संसद को दे सकता है। ऐसे सम्बन्धित राज्य के लिये संसद राज्य सूची में वर्णित विषयों पर विधियाँ बना सकती है।
4. यदि दो या दो अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पारित करके संसद से अनुरोध करें कि वह उनके लिये किसी राज्य सूची के विषय पर संयुक्त विधि बना दे तो वह ऐसा कर सकती है। बाद में इस प्रकार की

विधि को अन्य राज्य भी अपने यहाँ के विधानमण्डलों द्वारा इस आशय का प्रस्ताव पारित करके स्वीकार कर सकते हैं। संसद को किसी संधि अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संविदा को कार्यान्वित कराने के लिये ऐसी विधियां निर्मित करने की शक्ति है जो आवश्यक हो, भले ही उन विधियों का सम्बन्ध राज्य सूची के विषयों से ही सम्बन्धित क्यों न हो।

3.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना

फरवरी, 2002 में उत्तराखण्ड विधानसभा के लिए पहली बार चुनाव सम्पन्न हुए। 927 व्यक्तियों ने चुनाव में भाग लिया जिसमें 58 महिला उम्मीदवार थी। मात्र 4 महिलाएँ ही चुनाव जीत सकीं जो कुल विधानसभा सदस्यों की संख्या का 3.67% है। कुल 54.34% मतदान हुआ। 70 सदस्यों की विधानसभा में 3 क्षेत्र अनुसूचित जनजाति व 12 क्षेत्र अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित थे।

जनपदवार राज्य के विधानसभा क्षेत्र-

क्र0सं0	जनपद	विधानसभा क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9
5	पौड़ी गढ़वाल	8
6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4
8	बागेश्वर	3
9	अल्मोड़ा	7
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	7
12	चम्पावत	2
13	पिथौरागढ़	5

प्रथम निर्वाचित विधानसभा में कांग्रेस ने 36 क्षेत्र जीतकर बहुमत प्राप्त कर लिया। तीन बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे नारायण दत्त तिवारी को राज्य के राज्यपाल सुरजीत सिंह बरनाला ने मुख्यमन्त्री पद की शपथ दिलाई। नित्यानन्द स्वामी तथा भगत सिंह कोश्यारी के पश्चात श्री तिवारी राज्य के तीसरे मुख्यमन्त्री बने। श्री तिवारी राज्य के प्रथम निर्वाचित मुख्यमन्त्री थे। श्री तिवारी ऐसे प्रथम व्यक्ति है, जिन्हें दो राज्यों का मुख्यमन्त्री बनने का श्रेय प्राप्त है। श्री यशपाल आर्या को विधानसभा का अध्यक्ष चुना गया। श्री भगत सिंह कोश्यारी को विधानमण्डल दल का नेता चुना गया जो विधानसभा में विपक्ष के नेता चुने गए थे। श्री निजामुद्दीन बहुजन समाज पार्टी तथा श्री काशी सिंह उत्तराखण्ड क्रान्ति दल के नेता चुने गए थे।

राज्य के प्रथम चुनावों में प्रमुख राष्ट्रीय दलों तथा सभी क्षेत्रीय दलों ने विधानसभा के लिए अपने-अपने प्रत्याशियों को उम्मीदवार बनाया।

वर्तमान परिसीमन के आधार पर जिलेवार विधान सभा क्षेत्रों की स्थिति इस प्रकार हो गयी है-

क्र0सं0	जनपद	विधानसभा क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9
5	पौड़ी गढ़वाल	8
6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4
8	बागेश्वर	2
9	अल्मोड़ा	5
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	9
12	चम्पावत	3
13	पिथौरागढ़	5

अनूसुचित जनजातियों हेतु आरक्षित 3 विधानसभा क्षेत्र हैं- चकराता(देहरादून), खटीमा(ऊधमसिंह नगर) और धारचूला(पिथौरागढ़)

3.6.1 राज्य की विधायी संरचना

राज्य में कुल लोकसभा क्षेत्रों की संख्या- 5 (गढ़वाल, अल्मोड़ा, नैनीताल, टिहरी व हरिद्वार (सुरक्षित))। राज्य में कुल राज्यसभा क्षेत्रों की संख्या- 3 राज्य में कुल विधानसभा क्षेत्रों की संख्या- 70 और विधायक राज्यपाल द्वारा एंग्लो-इण्डियन समुदाय से मनोनीत एक सदस्य, कुल 71 विधायक।

राज्य का विधानमण्डल एक सदनात्मक (विधानसभा) है। अनुसूचित जाति के लिए 12 क्षेत्र आरक्षित तथा अनुसूचित जनजाति के लिए 3 क्षेत्र आरक्षित हैं।

3.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना): राज्यपाल

भारत के संविधान के अनुच्छेद-1 में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है। केन्द्र में जिस प्रकार राष्ट्रपति, कार्यपालिका का प्रमुख (अध्यक्ष) होता है उसी प्रकार राज्यों में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। भारत में केवल जम्मू-कश्मीर को छोड़कर शेष सभी राज्यों में लगभग वैसी ही शासन व्यवस्था अपनायी गई है, जैसी केन्द्र में अर्थात् संसदीय शासन व्यवस्था। संसदीय शासन में कार्यपालिका का अध्यक्ष वास्तविक शक्तियों का उपयोग नहीं करता, बल्कि वास्तविक अधिकार मन्त्रिपरिषद् के हाथों में होते है। राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मन्त्रिपरिषद् होती है। आमतौर पर राज्यपाल अपनी शक्तियों का उपयोग मुख्यमन्त्री व मन्त्रिमण्डल की सलाह से करेगा, जो कि राज्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी है, परन्तु संविधान के अनुसार राज्यपाल को कुछ विवेकाधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों का उपयोग करते समय राज्यपाल राष्ट्रपति के

प्रति उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन व्यवस्था में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है, जबकि मन्त्रिपरिषद् राज्य की कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान होती है।

संविधान के अनुच्छेद-153 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा। सन् 1956 में किए गए संशोधन के अनुसार एक ही व्यक्ति दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल के रूप में भी नियुक्त किया जा सकता है। सन् 1972 में उत्तर-पूर्व क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के पाँच राज्यों नागालैण्ड, असोम, मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय के लिए एक ही राज्यपाल नियुक्त किया गया। अनुच्छेद-154 के अनुसार राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में उसी प्रकार निहित होगी, जैसी कि संघ में राष्ट्रपति को प्राप्त हैं। राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति के समान किसी निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित नहीं होता, बल्कि अनुच्छेद- 155 के तहत् राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।

3.6.2.1 राज्यपाल की स्थिति

संविधान द्वारा राज्यों में भी संघीय क्षेत्र के समान संसदीय शासन की व्यवस्था की गई है और संसदीय व्यवस्था में शासन की शक्तियाँ ऐसी मन्त्रिपरिषद् में निहित होती है, जो विधायिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी हो। अतः मन्त्रिपरिषद् राज्य की वास्तविक प्रधान है और राज्यपाल केवल एक संवैधानिक प्रधान। संविधान के अनुच्छेद-163(1) के अनुसार जिन बातों में संविधान द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्यों को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कार्यों का निर्वहन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होती है। संविधान, राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं करता। केवल असम, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम, मेघालय, त्रिपुरा और नागालैण्ड के राज्यपाल को ही इस प्रकार की स्वविवेक की शक्तियाँ प्राप्त हैं। अतः राज्यपाल राज्य शासन का निर्विवाद वैधानिक अध्यक्ष है।

3.6.2.2 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

राज्य प्रसाशन में राज्यपाल की वही स्थिति है जो संघीय शासन में राष्ट्रपति की होती है अर्थात् राज्यपाल राज्य शासन का संवैधानिक अध्यक्ष तो है, किन्तु वास्तिविक शक्तियाँ मन्त्रिपरिषद् में निहित है। राज्यपाल केवल स्वविवेकी शक्तियों को छोड़कर अपनी अन्य सभी शक्तियों का उपयोग मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से करता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के अनुसार, ‘‘उन सिद्धान्तों के अनुसार, जिन पर राज्यों का शासन आधारित है, राज्यपाल को प्रत्येक दशा में मन्त्रिपरिषद् का परामर्श अवश्य मानना होगा और ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना होगा, जिसके कारण उसे अपने स्वविवेक या व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना पड़े।’’

राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियाँ उसकी वास्तविक स्थिति को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाती है। किन्तु हाल के वर्षों में राज्यपाल का पद काफी विवादास्पद हो गया है।

3.6.3 राज्य मन्त्रिपरिषद्

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 163 के अनुसार राज्य में राज्यपाल को परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था की गई है। राज्यपाल द्वारा स्वविवेकी कार्यों को छोड़कर अन्य सभी शासकीय कार्यों में मन्त्रिपरिषद्, राज्यपाल को परामर्श देगी। राज्य मन्त्रिपरिषद् राज्य की वास्तविक कार्यापालिका है, क्योंकि वास्तव में राज्य की सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति राज्य मन्त्रिपरिषद् में निहित है। राज्य मन्त्रिपरिषद् का प्रधान मुख्यमन्त्री होता है।

3.6.3.1 राज्य मन्त्रिपरिषद् का गठन

अनुच्छेद-163 के अनुसार, राज्यपाल को उसके विवेकाधीन कृत्यों को छोड़कर अन्य कार्यों में सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमन्त्री होगा। मन्त्रिपरिषद का गठन राज्यपाल द्वारा किया जाता है।

राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है तथा मुख्यमन्त्री की सलाह पर वह अन्य मन्त्रियों को भी नियुक्त करता है। मन्त्रिपरिषद् में सामान्यतः उन्हीं व्यक्तियों को शामिल किया जा सकता है जो राज्य विधानसभा या राज्य विधानपरिषद् के सदस्य हों। किन्तु विशेष परिस्थितियों में मन्त्रिपरिषद् में ऐसे व्यक्तियों को भी शामिल किया जा सकता है, जो इनके सदस्य न हों। किन्तु, इस प्रकार नियुक्त सदस्य को 6 माह के भीतर इनमें से किसी का सदस्य बनना आवश्यक है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उनका मन्त्री पद स्वतः ही समाप्त हो जाता है, किन्तु संविधान में यह व्यवस्था नहीं दी गई है कि ऐसा व्यक्ति त्यागपत्र देकर पुनः मन्त्रिपरिषद् का सदस्य बन सकता है या नहीं। सरकार इस प्रावधान का लाभ उठाते हुए पुनः उस व्यक्ति को मन्त्रिपरिषद् में शामिल कर लेती है।

3.6.3.2 मन्त्रिपरिषद् का कार्यकाल

मन्त्रिपरिषद् तब तक कार्यरत रहती है, जब तक मुख्यमन्त्री अपने पद बना रहता है। मुख्यमन्त्री के त्यागपत्र देने या बर्खास्त होने से मन्त्रिपरिषद् स्वतः ही विघटित हो जाती है।

1. राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद- राज्यपाल नाममात्र का कार्यकारी है और मन्त्रिपरिषद् वास्तिविक कार्यपालिका होती है। संविधान में वर्णित राज्यपाल की सत्ता को स्वीकृत कर लिया जाए तो राज्यपाल राज्य का वास्तविक शासक बन जाता है। मन्त्रिगण राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त ही पदासीन रहेंगे अर्थात् मन्त्रिपरिषद् तब तक पदासीन रहेगा जब तक उसे विधानसभा का बहुमत या समर्थन प्राप्त है। सामान्य स्थिति में राज्यपाल से मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के आधार पर ही कार्य करने की आशा की जाती है। अनुच्छेद- 167 के अनुसार मुख्यमन्त्री का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य प्रशासन सम्बन्धित मंन्त्रिपरिषद् के निर्णयों की सूचना राज्यपाल को दे। कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल मन्त्रिपरिषद् की सलाह के बिना भी कार्य कर सकता है। जैसे संवैधानिक तन्त्र की विफलता पर इस परिस्थितियों में राज्यपाल मंन्त्रिपरिषद् को बर्खास्त कर सकता है।
2. **अन्य मंन्त्रियों की नियुक्ति-** मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल मंन्त्रिपरिषद् के अन्य मंन्त्रियों की नियुक्ति करता है। संविधान में न तो मन्त्रियों की संख्या निश्चित की गई है और न ही श्रेणियाँ। मन्त्रिपरिषद् का आकार राज्य की परिस्थिति तथा मुख्यमन्त्री की इच्छानुसार बदलता रहता है। किसी राज्य का मुख्यमन्त्री चाहे तो उपमुख्यमंत्री पद की व्यवस्था कर सकता है। राज्य स्तर पर भी मन्त्रिपरिषद् में चार स्तर के मंत्री होते है- कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव। कैबिनेट स्तर तथा राज्य स्तर के मंत्री एक या एक से अधिक विभागों का कार्यभार सम्भालते हैं। उपमंत्री तथा संसदीय सचिव नीचे दर्जे के मंत्री होते हैं। वे कैबिनेट मन्त्रियों व राज्यमन्त्रियों के सहायक के रूप में कार्य करते हैं। उन्हें मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में वे तब भी भाग ले सकते हैं, जबकि उनके विभाग से सम्बन्धित मंत्री अनुपस्थित होता है। मुख्यमंत्री ही मन्त्रियों में विभागों के बंटवारे से सम्बन्धित आदेश जारी करवाता है।

3.6.4 मंत्रियों का कार्यकाल

सभी मन्त्री, राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करेंगे। प्रसादपर्यन्त का तात्पर्य है- राज्यपाल के प्रति मन्त्रि का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व। अर्थात् मुख्यमंत्री के आदेशों का उल्लंघन करने या मन्त्रिपरिषद् के विरूद्ध आचरण करने पर किसी भी मंत्री को राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह पर बर्खास्त कर सकेगा। मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होगी और विधानसभा का विश्वास प्राप्त रहने तक ही अपने पद रह सकेगी।

मन्त्रिपरिषद् का कोई भी मंत्री, जो निरन्तर 6 माह की अवधि तक राज्य के विधानमण्डल का सदस्य नहीं है, अर्थात् यदि कोई मंत्री अपना पद धारण करते समय राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं है और मंत्री अपना पद

धारण करने के पश्चात भी वह 6 माह तक राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं था, तो छः माह की अवधि बीत जाने पर वह मंत्री, मन्त्रि पद पर नहीं रह सकेगा।

3.6.5 राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद् के मध्य सम्बन्ध

अनुच्छेद-163 (1) के अनुसार यद्यपि राज्यपाल भी मुख्यमंत्री (मन्त्रिपरिषद्) की सलाह के अनुसार कार्य करेगा तथापि इस अनुच्छेद में राज्यपाल की कुछ 'विवेकाधीन शक्तियों' का भी उल्लेख है, जिनके पालन में वह मुख्यमंत्री की सलाह लेने को बाध्य नहीं है। अनुच्छेद-163 (2) के अनुसार यदि वह प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं, जिसमें राज्यपाल को संविधान के अनुसार अपने विवके से कार्य करना चाहिए, तो उस स्थिति में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में इस आधार पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं। यह उल्लेखनीय है कि राज्यपाल अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति के नियन्त्रण के अधीन रहते हुए करता है।

प्रत्येक मंत्री को राज्यपाल के सम्मुख अपना पद ग्रहण करने से पूर्व पद एवं गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है। संविधान के अनुच्छेद-164 के अनुसार मन्त्रियों को जो मासिक वेतन तथा भत्ते मिलते हैं, वह समय-समय पर राज्य विधानमण्डल द्वारा निश्चित किये जाते हैं।

3.6.6 मुख्यमंत्री की नियुक्ति

मन्त्रिपरिषद् के निर्माण के लिए सबसे महव्वपूर्ण कार्य मुख्यमंत्री की नियुक्ति करना है। अनुच्छेद- 164 के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमन्त्री के परामर्श कर करेगा। मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है, परन्तु वास्तव में राज्यपाल बहुमत दल के नेता को ही सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। यदि विधानसभा में किसी भी दल का बहुमत न हो तो मुख्यमंत्री की नियुक्ति में राज्यपाल एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

3.6.6.1 मुख्यमन्त्री के कार्य एवं शक्तियाँ

राज्य सरकार का वास्तिविक प्रधान मुख्यमन्त्री होता है। जिस प्रकार केन्द्र में राष्ट्रपति को संवैधानिक अध्यक्ष बनाया गया है, परन्तु वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमन्त्री में निहित है, उसी प्रकार राज्य में राज्यपाल संवैधानिक प्रमुख है, किन्तु वास्तविक प्रधान मुख्यमंत्री होता है। मुख्यमंत्री बहुमत दल का नेता होता है। वह राज्य का नायक और मुख्य प्रवक्ता भी होता है। मुख्यमन्त्री के व्यक्तित्व तथा राजनीतिक स्थिति पर ही राज्य का आर्थिक तथा समाजिक विकास निर्भर है।

राज्य का सम्पूर्ण शासन उसी के संकेत के माध्यम से चलाया जाता है। वह राज्य शासन का कप्तान है तथा राज्य मन्त्रिमण्डल में उसकी विशिष्ट स्थिति होती है अर्थात् वह राज्य का वास्तविक शासक होता है।

राज्य के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री को अनेक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जैसे-

1. मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के कारण वह मन्त्रिमण्डल का गठन करता है और मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
2. राज्यपाल को राज्यशासन या व्यवस्थापन सम्बन्धी निर्णयों से अवगत कराता है।
3. कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होने के कारण उसे समस्त प्रशासन के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है।
4. विधानसभा में शासकीय नीतियों तथा कार्यो की घोषणा और स्पष्टीकरण करने का उत्तरदायित्व मुख्यमन्त्री पर भी होता है।
5. मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के मध्य विभागों का बँटवारा करता है।

6. मन्त्रिमण्डल के पुनर्गठन की शक्ति भी मुख्यमन्त्री को प्राप्त है। यदि वह आवश्यक समझे तो मन्त्रिमण्डल का विस्तार या संकुचन कर सकता है।
7. मुख्यमन्त्री राज्यपाल का प्रमुख सलाहकार होता है।
8. राज्य के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ राज्यपाल से परामर्श करके करवाता है।
9. मुख्यमन्त्री ही राज्य प्रशासन का मुख्य शासक होता है।

3.6.6.2 महाधिवक्ता

संविधान के अनुच्छेद-177 के अनुसार प्रत्येक राज्य का एक महाधिवक्ता होगा जो भारत के महान्यायवादी के समान होगा। भारत के महान्यायवादी के कृत्यों के समान वह राज्य में कार्य करेगा। राज्य का राज्यपाल उसे नियुक्त करेगा तथा राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त वह पद पर बना रहेगा। महाधिवक्ता पद के लिए वे योग्यताएं आवश्यक हैं, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए निर्धारित की जाती हैं। इसका पारिश्रमिक राज्यपाल द्वारा निर्धारित होगा। महाधिवक्ता राज्य विधानमण्डल के सदनों की कार्यवाहियों में भाग ले सकता है। अपने विचार प्रकट कर सकता है, किन्तु उसे सदन में मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं है।

3.6.7 शासन के विभाग एवं कार्यालय

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्य में 38 विभागों को गठित किया है, जिनमें से 15 विभागों के मुख्यालय राजधानी देहरादून में तथा 6 विभागों के मुख्यालय नैनीताल में रखे गए हैं। कई प्रमुख शहरों में एक या दो विभागों के मुख्यालय बनाये गये हैं। राज्य के अलग-अलग शहरों में निम्नांकित विभागों का गठन किया गया है-

1. **देहरादून-** देहरादून में सम्पत्ति, खाद्य, बॉट-माप एवं उपभोक्ता संरक्षण, चुनाव कार्यालय, पुलिस, सतर्कता, सिंचाई, जल निगम, कोषागार, चिकित्सा, मुद्रणालय, नगर एवं ग्राम्य निदेशालय हैं।
2. **श्रीनगर-** श्रीनगर गढवाल में विकास आयुक्त, उद्योग एवं हथकरघा, खादी वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं खनिज विभाग हैं।
3. **नैनीताल-** नैनीतान में वन संरक्षण, ऊर्जा निगम, विद्युत सेफ्टी विभाग हैं।
4. **हल्द्वानी (नैनीताल)-** हल्द्वानी में श्रम, सेवायोजन, समाज कल्याण, परिवहन एवं आवास विभाग हैं।
5. **पौड़ी-** पौड़ी में विभागीय विशेषज्ञ संवर्ग विभाग है।
6. **नरेद्र नगर(टिहरी)-** नरेन्द्र नगर में होमगार्ड कमाण्डेन्ट का विभाग है।
7. **उधमसिंह नगर-** उधमसिंह नगर में महानिरीक्षक कारागार, उप गन्ना आयुक्त के विभाग हैं।
8. **अल्मोड़ा-** अल्मोड़ा में लोक निर्माण विभाग, निदेशक वैकल्पिक ऊर्जा, सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के विभाग हैं।
9. **रानीखेत-** रानीखेत में कृषि एवं उद्यान, सैनिक कल्याण विभाग हैं।
10. **गोपेश्वर-** गोपेश्वर में पशुधन एवं मत्स्य विकास विभाग है।
11. **रामनगर-** रामनगर में शिक्षा विभाग है।

3.6.8 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन

उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद कार्मिकों का विभाजन सबसे पेचीदा मुद्दा रहा है। भारत सरकार द्वारा किये गये अंतिम आबंटन के बाद भी कई कर्मचारी इच्छा के विपरीत उत्तर प्रदेश से उत्तराखण्ड आने को तैयार नहीं हुए। दूसरी तरफ कई ऐसे कर्मचारी थे जिन्होंने उत्तराखण्ड से उत्तर प्रदेश जाना मंजूर नहीं किया। उत्तराखण्ड के विकल्पधारी इसलिये भी उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं कर पाये, क्योंकि सम्बन्धित विभाग ने उन्हें उत्तर

प्रदेश से नये राज्य के लिये कार्य मुक्त नहीं किया था। जिसका सीधा प्रभाव उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखा गया।

भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के विभिन्न विभागों हेतु कार्मिकों का जो आबंटन किया गया। उसके अनुसार 'क' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 403, 'ख' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 1209, 'ग' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 16825 तथा 'घ' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 2875 थी। वर्ष 2007 के मध्य तक भी इसमें से 'क' श्रेणी के 31, ' 'ख' श्रेणी के 193, 'ग' श्रेणी के 2895 तथा 'घ' श्रेणी के 415 कार्मिकों ने उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं किया। अनेकों कर्मचारियों के न्यायालय में चले जाने के कारण भी मामले लटके रहे। युवा कल्याण विभाग, व्यापार कर विभाग, मनोरंजन कर, स्टाम्प एवं निबन्धन, आबकारी विभाग, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, गृह विभाग, विधि विज्ञान, पुलिस विभाग, नागरिक सुरक्षा, कारागार, अर्थ व संख्या प्रभाग के कार्मिकों के मामले न्यायालय में विचाराधीन है।

उत्तराखण्ड से उत्तर प्रदेश हेतु 'क' श्रेणी में 134, 'ख' श्रेणी में 663, 'ग' श्रेणी में 7200 तथा 'घ' श्रेणी में 218 कार्मिक अवमुक्त किये जाने के आदेश हैं। इनमें से भी खेल, ग्रामीण, अभियन्त्रण विभाग, आबकारी, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति तथा सिंचाई विभाग से सम्बन्धित कुछ कार्मिकों के मामले न्यायालय में लम्बित होने के कारण उन्हें कार्यमुक्त नहीं किया जा सका है। पुलिस कार्मिकों का विभाजन भी अभी तक पूर्ण नहीं हो पाया है। इसी प्रकार लगभग सभी विभागों में कार्मिकों के बटवारें को लेकर अभी तक समस्या बनी हुयी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संविधान में केन्द्र राज्यों को लेकर कितनी सूचियाँ हैं?
2. समवर्ती सूची राज्य और केन्द्र की व्यवस्थापिका को समवर्ती शक्तियों के द्वारा कितने विषयों पर अधिकार प्रदान करती है?
3. विधायी शक्तियाँ किस अनुच्छेद में वर्णित हैं?
4. संकटकालीन उपबन्ध संविधान के किस भाग में हैं?
5. राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष कौन होता है?
6. केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को लेकर कौन से आयोग बनाये गये हैं?
7. राज्य मंत्री परिषद का गठन किस अनुच्छेद के अन्तर्गत किया गया है?
8. राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल को किस अनुच्छेद के आधार पर सौंपी गयी है?
9. उत्तराखण्ड राज्य में कुल कितने विधानसभा क्षेत्र हैं?
10. उत्तराखण्ड राज्य में लोकसभा व राज्यसभा की कितनी सीटें हैं?

3.7 सारांश

केन्द्र राज्य सम्बन्धों में सुधार की दृष्टि से अनेकों प्रयास होते रहे हैं। सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने को लेकर राज्य और केन्द्र दोनों ने सार्थक प्रयास किये हैं। केन्द्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। अब समय आ गया है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों की समस्या पर शान्तिपूर्वक व सकारात्मक विचार-विमर्श हो। देश संकटों से घिरा है ऐसे में केवल एक-दूसरे पर दोषारोपण करने से काम नहीं चलेगा। सही राजनीतिक पहल समय की माँग है। छोटे राज्यों की माँगों को उनकी सार्थकता के आधार पर गठन किया जाना आवश्यक है। आज की स्थितियों को देखते हुए सहकारी संघवाद एकमात्र समाधान है।

नये राज्य जो कुछ वर्ष पूर्व ही अस्तित्व में आये हैं, उन पर केन्द्र को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। नये राज्य भी केन्द्र के सहयोगी बने तभी दोनों की बीच सही तारतम्यता बनी रहेगी। देश के संविधान में वर्णित कल्याणकारी

राज्य की परिकल्पना को साकार करने हेतु नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य में स्वायत्त शासन को अधिक महत्व दिया गया है। राज्य में जनसंख्या के आधार पर नगरीय, ग्रामीण स्वायत्त संस्थाओं एवं संगठनों का वर्गीकरण ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, नगर परिषद् तथा नगर निगम के रूप में किया गया है।

सारांशतः हम ये कह सकते हैं कि इस अध्याय में हमने केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संविधान में संवैधानिक शक्तियों का विभाजन व दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों पर गंभीरता से चिन्तन किया। इसके साथ ही हमने ये भी जानने का प्रयास किया कि उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना क्या है और वह किस प्रकार कार्य कर रही है।

3.8 शब्दावली

परिक्षेप- परिदृश्य, विनियम- अधिनियम, अभिलेख- लेख, कृत्य- कार्य, परिसीमन- सीमा निर्धारण

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 3(संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची), **2.** 52 विषयों पर, **3.** अनुच्छेद- 245 से 363, **4.** भाग-18, **5.** राज्यपाल, **6.** प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग, **7.** 163 में, **8.** 154 के तहत्, **9.** 70, **10.** 5 व 3

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी-अवस्थी- भारतीय प्रशासन।
2. टी0सी0 भट्ट- उत्तराखण्ड, राज्य आन्दोलन का नवीन इतिहास।
3. पी0 सी0 जोशी- उत्तराखण्ड के आईने में हमारा समय।
4. शेखर पाठक- पहाड़, (सम्पादक)।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पुखराज जैन, वी0एन0 खन्ना, चन्द्रकुमार सक्सेना- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं गणतन्त्र का संविधान।
2. एम0वी0 पायली- भारत की संवैधानिक सरकारें।
3. नन्द किशोर- क्षेत्रीय परिषदों की प्रभावी भूमिका।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अवशिष्ट शक्तियाँ क्या होती हैं? इस पर अपना लेख लिखिए।
2. राज्य के विधानमण्डलों को विधि निर्माण में क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं ? स्पष्ट करें।
3. उत्तराखण्ड की विधायी संरचना के बारे में आपकी जानकारी क्या है?
4. मुख्यमंत्री की नियुक्ति कैसे होती है व उसके कार्य क्षेत्र क्या हैं?
5. उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड में कार्मिकों के विभाजन की स्थिति क्या है? समझायें।

इकाई- 4 भारत में केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध- उत्तराखण्ड के वित्तीय सन्दर्भ में

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध
4.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध के संवैधानिक प्रावधान
4.4 वित्त आयोग
4.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण शिफारिशें
4.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य
4.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता
4.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

इससे पहले इकाई तीन में हमने जाना कि संविधान द्वारा केन्द्र-राज्य सम्बन्ध को लेकर क्या-क्या शक्तियाँ दी गयी हैं तथा इनका बटवारा संविधान में कैसे किया गया है? साथ ही हमने पिछली इकाई में केन्द्र तथा राज्य के विधायी और प्रशासनिक सम्बन्धों को भी विस्तृत रूप से जानने का प्रयास किया। उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना का भी इस इकाई में अध्ययन किया गया। साथ ही इस बात का भी अध्ययन किया गया कि केन्द्र सरकार द्वारा कार्मिकों का बटवारा दोनों राज्यों(उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड) के बीच कैसे किया गया और उसकी वर्तमान स्थिति क्या है? इस इकाई में हम भारत में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध उत्तराखण्ड के वित्तीय सन्दर्भ में चर्चा करेंगे। केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों के बारे भी हम केन्द्रीय प्रधानता वाली भारतीय संघवाद की सामान्य प्रवृति के दर्शन कर सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि वित्तीय दृष्टि से संघ अधिक शक्तिशाली है। लेकिन राज्यों के भी अपने संसाधन हैं। सुनियोजित अर्थव्यवस्था के माध्यम से देश की जरूरतों के स्वरूप को देखते हुए संघ राज्यों के लिये सारवान राशियों की व्यवस्था करता है।

नये राज्यों को सरकार द्वारा उचित सहयोग व विशेष अनुदान देकर आर्थिक रूप से मजबूत व सबल बनाने का प्रयास किया जाता रहा है। उत्तराखण्ड को भी केन्द्र सरकार द्वारा सहायता प्रदान की गयी है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। उत्तराखण्ड को लेकर वित्त आयोग की रिपोर्ट व योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड राज्य को विशेष राज्य के दर्जे के रूप में विशेष आर्थिक पैकेज दिया गया है जिसकी चर्चा हम अन्य राज्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन के रूप में करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- केन्द्र-राज्य के वित्तीय सम्बन्धों के संवैधानिक रूप को समझ पायेंगे।
- राज्यों को लेकर 13वें वित्त आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशें के बारे में जान पायेंगे।
- केन्द्र द्वारा उत्तराखण्ड को दिये जाने वाला बजट व उसकी समीक्षा को समझ पायेंगे।
- परिसम्पत्तियों एवं दायित्वों का उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच बटवारे की स्थिति को जान पायेंगे।

4.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

केन्द्र तथा राज्य की सरकारों के बीच केवल विधायी व प्रशासनिक शक्तियों का ही बटवारा नहीं होता, वित्तीय स्रोतों का भी बटवारा होता है। भारत के संविधान के अलावा वित्तीय क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों का इतना विस्तृत अध्ययन अन्य किसी देश के संविधान में नहीं मिलता है। भारत में संविधान द्वारा एक वित्त आयोग की व्यवस्था की गयी है। इसका मुख्य उद्देश्य है केन्द्र तथा राज्यों के मध्य साधनों से होने वाली प्राप्तियों का वितरण तथा समायोजन करना। इस वितरण प्रणाली में कभी-कभी केन्द्र और राज्यों के बीच मतभेद व तनाव भी उभर जाते हैं। भारतीय संविधान ने संघात्मक राज्यों की इस कठिन समस्या को सुलझाने के लिये एक मौलिक कदम उठाया है। भारत सरकार अधिनियम- 1935 ने भी इस समस्या को सुलझाने का अच्छा प्रयास किया था। इस सारी समस्या को दूर करने के लिये राजस्व के समस्त स्रोत केन्द्र और प्रान्तों के मध्य बाँट दिये गये। कुछ विषय में केन्द्र कर लगाता व इक्कठा करता था, परन्तु जो कुछ भी प्राप्त होता था वह उसे प्रान्तों में बाँट देता था। इस अधिनियम की वास्तविक त्रुटि यह थी कि प्रान्तों को बहुत ही कम राजस्व स्रोत दिये गये थे। वर्तमान संविधान निर्माताओं ने 1935 के अधिनियम की त्रुटियों को छोड़ते हुए, उसकी व्यवस्था का अनुसरण किया है। संविधान में केन्द्र और राज्य के बीच साधनों के वितरण की व्यवस्था की गयी है। किन्तु वितरण की व्यवस्था के लिये राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग को विस्तारपूर्वक वितरण करने का कार्य सौंपा गया है।

4.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध के संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धान्त हैं। जिनकों हम निम्न रूप में देख सकते हैं- कार्य, क्षमता, पर्याप्तता।

उपयुक्तत इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी। अतः भारतीय संविधान में समझौते की चेष्टा की गयी। संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के निरूपण को इस प्रकार देखा जा सकता है-

4.3.1 कर निर्धारण, शक्ति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन

भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं हैं, प्रथम- केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण निर्धारण कर दिया गया है और द्वितीय- करों से प्राप्त आय का बंटवारा किया जाता है।

केन्द्र के प्रमुख राजस्व स्रोत हैं- निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृर्षि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रेलें, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार, आदि। राज्यों के राजस्व श्रोत निम्न हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृर्षि भूमि पर कर, सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर, वाहनों पर चुंगी कर आदि।

केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, विनियोजित किये जाने वाले शुल्कों के उदाहरण निम्नवत् हैं- बिल, विनियमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डिया, चेकों आदि पर मुद्रांक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौक-श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहित विनियोजित किये जाने वाले करों के उदाहरण निम्न हैं- कृर्षि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान-प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किये गये विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय-विक्रय पर कर।

कतिपय कर केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किये जाते हैं, पर उनका विभाजन केन्द्र तथा राज्यों के बीच होता है। आय कर व दवा तथा शौक-श्रृंगार सम्बन्धी चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

4.3.2 सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये दिया जाने वाला अनुदान

संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों को चार तरह के सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है। प्रथम- पटसन या उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों को दिया जाता है। द्वितीय- बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिये भी केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है। तृतीय- आदिम जातियों व कबीलों की उन्नति व उनके कल्याण की योजनाओं के लिये भी सहायक अनुदान केन्द्र द्वारा दिया जाता है। चतुर्थ- राज्य को आर्थिक कठिनाईयों से उबारने के लिये केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता करता है।

4.3.3 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध

संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता है, परन्तु वह विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज देते समय केन्द्र सरकार किसी प्रकार की शर्त भी लगा सकती है।

4.3.4 करों से विमुक्ति

राज्यों द्वारा केन्द्र की सम्पति पर कोई कर तब तक नहीं लगाया जा सकता, जब तक संसद विधि द्वारा कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार केन्द्र सरकार भी राज्य सम्पत्ति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

4.3.5 भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण

भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मंत्रीमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकार के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जाँच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य की आय पर अपना नियंत्रण रखता है।

4.3.6 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों की आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा केन्द्र के करों की आय में भाग बांटने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

4.4 वित्त आयोग

वित्तीय आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के अनुच्छेद-280 में की गयी है। इसके अनुसार भारत का राष्ट्रपति अपने स्वविवेक से प्रति पाँच वर्ष के बाद एक नवीन वित्त आयोग गठित करेगा। वित्त आयोग में एक अध्यक्ष के साथ-साथ चार अन्य सदस्यों की संवैधानिक व्यवस्था है। इसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होता है, जिसे सार्वजनिक कार्यों में व्यापक अनुभव होता है। शेष चार सदस्यों में एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इसी प्रकार का योग्यताधारी, एक ऐसा व्यक्ति किसी सरकार के वित्त तथा लेखाओं का विशेष ज्ञान हो, एक ऐसा व्यक्ति जिसे वित्तीय विषयों तथा प्रशासन के बारे में व्यापक अनुभव हो तथा एक व्यक्ति जिसे अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान हो, होता है। वित्त आयोग का कार्य केन्द्र तथा राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों की आय का वितरण तथा केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों को सहायता देना आदि विविध बातों के सम्बन्ध में सुझाव राष्ट्रपति को देना है। राष्ट्रपति वित्त आयोग की संस्तुतियों को संसद के समक्ष रखता है। अनुच्छेद-280 के अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद- 270, 273, 275, भी इसकी पुष्टि करते हैं। भारतीय संविधान में वित्त आयोग के कतिपय कार्य सुनिश्चित किये गये हैं। इसके कार्यों में केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों की शुद्ध आगमों का वितरण भारत की संचित निधि में से राज्यों के सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धान्त सुनिश्चित करना एवं सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गये किसी अन्य विषय के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश देना प्रमुख है।

वर्तमान में 13वाँ वित्त गठित किया जा चुका है। अब तक भारत में 12 वित्त आयोग गठित हो चुके हैं। जिनको निम्न तालिका में देखा जा सकता है-

वित्त आयोग	गठन का वर्ष	अध्यक्ष का नाम	क्रियान्वय का वर्ष	रिपार्ट देने का वर्ष
पहला	1951	के0सी0 नियोगी	1952-57	1952
दूसरा	1956	के0 सन्थानम	1957-62	1956 और 1957
तीसरा	1960	ए0के0 चन्दा	1962-66	1961
चौथा	1964	डॉ0 पी0वी0 राजामन्नार	1966-69	1965
पाचवां	1968	महावीर त्यागी	1969-74	1968 और 1969
छठा	1972	ब्रह्मानन्द रेड्डी	1974-79	1973
सातवाँ	1977	जे0एम0 शेलट	1979-84	1978
आठवाँ	1983	वाई0बी0 चव्हाण	1984-89	1983 और 1984
नवाँ	1987	एन0के0पी0 साल्वे	1989-95	1983 और 1984
दसवाँ	1992	के0सी0 पंत	1995-2000	1995
ग्यारहवाँ	1998	ए0एम0 खुसरो	2000-2005	2000
बारहवाँ	2002	सी0 रंगराजन	2005 – 2010	2004' अन्तरिम रिपोर्ट

4.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें

सरकार ने पूर्व वित्त सचिव विजय केलकर की अध्यक्षता वाले 13वें वित्त आयोग की रपट संसद में पेश की। केन्द्र और राज्यों के बीच केन्द्रीय करों के विभाजन से सम्बन्धित वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्न हैं-

1. विभाज्य केन्द्रीय करों की शुद्ध निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत हो।
2. विभिन्न करों के साथ लगाये गये उपकरों तथा अभिकरों की समीक्षा की जाये।
3. केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों में राज्यों को दिया जाने वाला हिस्सा 39.5 प्रतिशत रखा जाये।
4. राज्यों में वित्त उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियमों का अनुपालन बनाया जाये।
5. राज्यों में वर्ष 2011-12 तक राजकोषीय सुधार, मार्ग पर वापस आने की उम्मीद।
6. राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक निधि को राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया निधि में मिला दिया जाय।
7. राष्ट्रीय आपदा राज्यों के लिये अनुशंसा अवधि (अप्रैल 2010 से मार्च 2015) के दौरान आयोजन भिन्न राजस्व अनुदान के तहत 51,800 करोड़ रुपये आवंटित किये जाये। आयोजन भिन्न राजस्व घाटे की स्थिति से उबर चुके तीन विशेष श्रेणी के राज्यों के लिये 1500 करोड़ रुपये का निष्पादन अनुदान दिये जाये।
8. चार वर्षों के 2010-12, से 2014,15 के लिये सड़कों और पुलों के लिये अनुदान के रुप में 19,930 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश
9. वन, अक्षय उर्जा तथा जल क्षेत्र प्रबन्ध के लिये 5000 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।
10. प्रारम्भिक शिक्षा के लिये अनुदान के रुप में 24,068 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।
11. राज्यों की सहायता अनुदान के रुप में सिफारिश अवधि के लिये 3,18,581 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश।
12. वित्त आयोग ने वस्तु एवं सेवा कर के क्रियान्वयन के कारण राज्यों को होने वाले राजस्व नुकसान की भरपायी के लिये 50,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किये जाने की सिफारिश। जी0एस0टी0 का क्रियानवयन अप्रैल 2013 या उसके बाद होने पर यह राशि घटकर 40,000 करोड़ रुपये तथा अप्रैल 2014 या उसके बाद इसका क्रियानवयन होने पर 30,000 करोड़ रुपये का प्रावधान।

4.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य

उत्तर प्रदेश राज्य के साथ परिसम्पत्तियों के बटवारें के बाद केन्द्र सरकार से नवगठित राज्य को सहायता मिलनी शुरु हो गयी है। देश के हिमालयी क्षेत्रों में 6 प्रतिशत से कम जनसंख्या रहती है। योजना आयोग भारत सरकार के आफिस मैमोरेंडम संख्या- एफ0 संख्या 4/28/2000 एफ0 आर0 (बी0)दिनांक 21 जनवरी 2002 के अनुसार राष्ट्रीय विकास परिषद की 1 सितम्बर 2001 को सम्पन्न बैठक में उत्तराखण्ड को वर्ष 2001-02 से विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा दिया गया, किन्तु यह विधि बहुत लाभकारी सिद्ध नहीं हो पायी। निर्णय के अनुसार केन्द्रीय सरकार को सभी केन्द्र अनुदानित योजनाओं के लिये 90 प्रतिशत अनुदान देना चाहिये था। किन्तु केन्द्र सरकार ने 2001-10 तक विशेष दर्जा प्राप्त राज्य को मिलने वाली अनुदान राशि आवंटित नहीं की। यह अनुदान तभी मिल सकता है जब केन्द्र सरकार का वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय इसे स्वीकार करें।वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीनस्थ है। इस मंत्रालय ने उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा देने वाली अनुदान राशि का प्रतिशत नहीं बढ़ाया। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के आफिस मेमोरेण्डम संख्या- 11015/1/2007 एन0 ई0 दिनांक 16 अक्टूबर 2000 के द्वारा उत्तर पूर्वी राज्यों को विशेष श्रेणी वाले राज्यों की भांति 9:10 के अनुपात में

अनुदान देने के निर्देश जारी किये। 1:10 के अनुपात के अनुसार 2009-10 में उत्तराखण्ड को लगभग 2500 करोड़ रुपये की सहायता कम मिलि है।

पिछले दो वर्षों में केन्द्र सहायतित योजनाओं पर व्यय किये गये धनराशि निम्न रुप में देखी जा सकती है।

क्रम संख्या	2008-09 (रूपये करोड़ों में)	2009-10 (रूपये करोड़ों में)
1	परिव्यय 1275.85	1358.44
2	बजट प्राविधान 1683.52	1794.48
3	स्वीकृति 1552.59	1071.21
4	व्यय 870.73	995.01

इस आकड़े से अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तराखण्ड को राष्ट्रीय विकास परिषद के निर्णय के बावजूद लगभग 20 प्रतिशत अनुदान पिछले 10 वर्षों से कम मिल रहा है। केन्द्रीय बजट से राज्यों को एक मुश्त रकम दी जाती है। विशेष श्रेणी के राज्यों को भारत सरकार या केन्द्र द्वारा दी जाने वाली प्रति व्यक्ति अनुदान राशि व प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत को हम सारणी के माध्यम से देख सकते हैं-

क्रम संख्या	विशेष श्रेणी राज्य	प्रति व्यक्ति अनुदान (रूपये में)	प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत
1	मिजोरम	48,193	48.5
2	नागालैंड	29,543	36.2
3	मणिपुर	28,229	51.2
4	हिमांचल प्रदेश	29,897	17.7
5	त्रिपुरा	26,091	26.1
6	अरुणांचल प्रदेश	23,264	58.1
7	जम्मू-काश्मीर	33,197	36.0
8	मेघालय	27,209	24.7
9	सिक्किम	27,554	57.8
10	उत्तराखण्ड	15,468	13.6

सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि ,सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि राज्य सरकार की उपलब्धी है। उत्तराखण्ड के 09 पहाड़ी जिलों का योगदान 35 प्रतिशत है तथा सकल उत्पाद दर में 65 प्रतिशत वृद्धि हुयी है।

वर्ष 2008-09 में प्रति व्यक्ति आय में निम्न आकड़ों में देखा जा सकता है-

क्रम संख्या	जनपद	प्रति व्यक्ति आय)2008-09) रूपये में
1	उत्तरकाशी	25,379
2	चमौली	32,038
3	रुद्रप्रयाग	24,474
4	पौड़ी	28,139
5	पिथौरागढ़	28,596
6	बागेश्वर	22,709
7	अल्मोड़ा	28,896
8	टिहरी	33,999

9	नैनीताल	41,180
10	चंपावत	27,374
11	उधमसिंह नगर	33,895
12	हरिद्वार	50,227
13	देहरादून	43,522

4.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता

राज्य के आर्थिक विकास को मजबूती प्रदान करने के लिये वार्षिक परियोजिना के परिव्यय में निरन्तर वृद्धि हुई है। 9वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुल रू0 4430 करोड़ का परिव्यय था। 10वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्य के लिये रू0 9000 करोड़ की योजना स्वीकृत की गयी। दोनों योजनाओं के परिव्यय से स्पष्ट होता है कि वार्षिक योजनाओं हेतु अनुमोदित परिव्यय और व्यय में निरन्तर वृद्धि हुयी है। केन्द्र की सहायता का लाभ उत्तराखण्ड सरकार को मिलता रहा है। राज्य के विकास में केन्द्रीय अनुदान का विशेष महत्व है। केन्द्रीय योजना आयोग ने राज्य की वर्ष 2005-06 की सालाना योजना के परिव्यय में एक साथ 45 प्रतिशत की वृद्धि की, जो राज्य के लिये एक बड़ी उपलब्धि थी। वर्ष 2004-05 में प्रदेश की योजना के लिये 1865 करोड़ का परिव्यय अनुमोदित था, जबकि इसे 2005-06 में 2700 करोड़ रूपये कर दिया गया। इसके बाद भी केन्द्र सरकार द्वारा राज्य के विकास के लिये निरन्तर अनुदान दिया गया।

4.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन

उत्तर प्रदेश से जब उत्तराखण्ड अलग राज्य के रूप में उभर के आया तब चूल्हे-चौके के अलग होने से कई तरह के हिस्से-बटवारें होने थे। कुछ परिसम्पत्तियों पर दोनों के बीच एक सहमति न होने के कारण केन्द्र को हस्तक्षेप करना पड़ा। केन्द्र सरकार के स्पष्ट आदेशों के बाद भी अनेकों मामलों में उत्तर प्रदेश रोड़े अटकाता रहा। जबकि दोनों प्रदेशों के शीर्ष अधिकारियों की बैठकों में महत्वपूर्ण मुद्दों पर वार्ता हो चुकी थी। नवम्बर 2007 के मध्य में अधिकारियों की इस बैठक में उत्तराखण्ड के अधिकारियों ने पहली माँग यही रखी कि जो सम्पत्ति नहर व रहवाहों के अलावा डैम आदि हैं, वह सभी उत्तराखण्ड को सौंप दिये जाएं। इस बात पर उत्तर प्रदेश के अधिकारियों ने कहा कि नहरों के प्रमुख कार्य गंगा प्रबन्धन बोर्ड को सौंपे जायें। इससे किसी एक राज्य का किसी भी नहर के संचालन पर एकाधिकार नहीं हो सकेगा। उत्तराखण्ड में स्थित नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशयों में से निकलने वाली नहरों की नीलामी को लेकर उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश में ऐसी ठनी कि मामला पहले ही न्यायालय में पहुँच गया था। 15 सितम्बर 2003 को नैनीताल हाईकोर्ट ने उत्तराखण्ड के पक्ष में फैसला देते हुए कहा था कि नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशय पूरी तरह उत्तराखण्ड राज्य में हैं और इस जलाशयों से निकलने वाली मछली की भी नीलामी का उत्तर प्रदेश विकास निगम लि0 को कोई अधिकार नहीं है। उत्तराखण्ड या उसका निगम ही इन जलाशयों की मछली की नीलामी कर सकता है। जबकि शारदा सागर जलाशय उत्तराखण्ड व उत्तर प्रदेश दोनों राज्यों में पड़ता है, इसलिये इनमें से निकलने वाली मछलियों की नीलामी दोनों राज्य मिलकर कर सकते हैं।

आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के लिये भारत सरकार की राय के अनुसार उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के लिये 1 मार्च 2001 को मुख्य सचिव समिति का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त विभागों के स्तर पर उत्तराखण्ड एवं उत्तर प्रदेश की संयुक्त विभागीय सचिव समितियों का गठन किया गया। 6 मार्च 2001 को उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्रियों के मध्य उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही के

सम्बन्ध में लखनऊ में बैठक आयोजित हुई। जिन 17 महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर बैठक में विचार-विमर्श हुआ, उसमें नई दिल्ली स्थित उत्तर प्रदेश निवास उत्तराखण्ड को देने तथा उत्तर प्रदेश तराई बीज विकास निगम को दोनों राज्यों के सयुक्त स्वामित्व एवं प्रबन्धन में संचालित करने पर सहमति बनी। 10 अप्रेल 2006 को गृह मंत्रालय भारत सरकार के स्तर पर सम्पन्न समीक्षा बैठक में प्राप्त निर्देशों के अनुपालन की समीक्षा हेतु 30 अगस्त 2006 को प्रमुख सचिव उत्तर प्रदेश पुनर्गठन समन्वयक विभाग की अध्यक्षता में बैठक आयोजित हुई। भारत सरकार ने कतिपय प्रकरणों का निस्तारण दोनों उत्तरवर्ती राज्यों द्वारा समन्वित रूप से मई व जून 2006 तक किये जाने के निर्देश दिये थे। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार द्वारा उनकी प्रगति की स्थिति से अवगत कराये जाने की भी अपेक्षा की गयी थी। उक्त सम्बन्धी प्रकरणों की प्रगति की समीक्षा प्रमुख सचिव उत्तर प्रदेश पुनर्गठन समन्वय विभाग द्वारा 30 अगस्त 2006 को की गयी और सिंचाई विभाग, औद्योगिक विकास विभाग, उर्जा, कृर्षि, गन्ना एवं चीनी उद्योग, पंचायती राज, मत्स्य विकास, शिक्षा, कारागार, श्रम, सैनिक कल्याण/समाज कल्याण तथा नगर विकास विभाग से जुड़े 13 प्रस्तावों पर चर्चा और प्रगति की समीक्षा की गयी।

दूसरी ओर वन विकास निगम की लगभग 2 अरब रूपये की रकम को लेकर उत्तर प्रदेश का रवैया काफी हैरत भरा रहा। इस मुद्दे पर केन्द्र सरकार ने 13 फरवरी व 28 जुलाई 2004 को स्पष्ट आदेश किया कि उत्तराखण्ड को वन निगम की करीब 4 अरब रूपये की निधि से 54 प्रतिशत भाग दे दिया जाए, लेकिन केन्द्र के आदेश के बाद भी वन विकास निगम को अपना हक पाने के लिये काफी मेहनत करनी पड़ी।

पुलिस विभाग की परिसम्पत्तियों के बंटवारे के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के सचिवों के बीच जो बैठक हुई, उनका कोई परिणाम नहीं निकला। लिये गये निर्णयों के आधार पर पुनर्गठन आयुक्त उत्तराखण्ड शासन, विकास भवन, सचिवालय, उत्तर प्रदेश के माध्यम से पुलिस विभाग के विभिन्न मुख्यालयों के स्टोर से वर्तमान मूल्य रूपये 4,87,85,270 की सूची प्राप्त हुई, जिसके आधार पर अंकित मूल्य से पुलिस मुख्यालय उत्तराखण्ड सहमत नहीं था। किन्तु कोई विकल्प न होने के कारण अंकित वर्तमान मूल्य का 16 प्रतिशत भाग रूपये 78,05,643.20 उत्तराखण्ड राज्य को उपलब्ध कराये जाने की अपेक्षा की गयी।

31 मार्च 2001 के पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश वन निगम के आर्थिक पत्र में दर्शित आरक्षित एवं अधिशेष की राशि रूपये 425.11 करोड़ की 54 प्रतिशत राशि जो उत्तराखण्ड को सौंपी जानी चाहिए थी, उसमें अभी भी विवाद बना हुआ है। उत्तर प्रदेश वन निगम की परिसम्पत्तियों का उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड राज्य के वन निगमों के मध्य भारत सरकार के हस्तक्षेप के उपरान्त ही 13 फरवरी 2004 के आदेशों के क्रम में किया जाना शुरू हुआ। इससे पहले दोंनो राज्यों के बीच यह मामला उलझा रहा। 31 मार्च 2001 को कर सम्पत्तियों का 54:46 के अनुपात में उत्तराखण्ड व उत्तर प्रदेश वन निगम के मध्य विभाजन का आदेश केन्द्र सरकार द्वारा किया गया था।

उत्तराखण्ड वन विकास निगम का गठन 1 अप्रेल 2001 को किया गया था। परिसम्पत्तियों के बंटवारे को लेकर उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच एका नहीं बन पाया। परिसम्मत्तियों को लेकर उत्तर प्रदेश का रूख सकारात्मक नहीं रहा, जिस कारण केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। भारत सरकार द्वारा दोंनों पक्षों को सुनने के उपरान्त दोनों राज्यों के मध्य परिसम्पत्तियों के सम विभाजन के आदेश निर्गत किये गये, किन्तु भारत सरकार के आदेश के विरूद्ध उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 28 अप्रैल 2004 को भारत सरकार को पुनर्विचार हेतु आवेदन किया। जिस पर भारत सरकार ने 28 जुलाई 2004 को निर्णय देते हुए अपने पूर्व निर्णय यथावत रखा।

उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच आज कई परिसम्पत्तियों का विभाजन होना शेष है। दोनों के बीच केन्द्र सरकार ने अपनी अहम भूमिका निभाई है। उत्तराखण्ड को केन्द्र द्वारा वित्तीय सहायता के अतिरिक्त अन्य सहयोग भी दिया जाता रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में अब तक कितने वित्त आयोग गठित हो चुकें हैं?
2. पहला वित्त आयोग का गठन कब हुआ?
3. 13वें वित्त आयोग के अध्यक्ष कौन हैं?
4. केन्द्रीय स्तर पर योजनाओं का निर्माण कौन करता है?
5. केन्द्र व राज्यों के बीच करों का बंटवारा कौन करता हैं?
6. आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के लिये उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के लिये मुख्य सचिव समिति का गठन कब हुआ?
7. वित्त आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में है?
8. राज्यों की वित्तीय आवश्यकता को केन्द्र कौन-कौन से तरीकों से पूरा करता है?
9. एफ0 आर0 बी0 एम0 का पूरा नाम क्या है?
10. पहले वित्त आयोग का क्रियान्वयन का वर्ष कब से कब तक था?

4.9 सारांश

केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों के साथ-साथ वित्तीय सम्बन्ध भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के विस्तृत विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र सरकार राज्यों के विकास के लिये और राज्यों को आर्थिक रूप से सम्पन्न व शक्तिशाली बनाने के लिये प्रयासरत रहा है। राज्यों के आर्थिक विकास में केन्द्र हमेशा सहयोगी रहा है। सायद यही कारण है कि भारतीय संविधान में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। इस अध्याय में हमने केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों का अध्ययन करने के साथ-साथ इस बात का भी अध्ययन किया कि केन्द्रीय योजना आयोग कैसे राज्यों के लिये योजनाएं तैयार करता है। वित्त आयोग केन्द्र तथा राज्यों के बीच करों का निर्धारण करता है, जो दोनों के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान द्वारा एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गयी है, जो नये राज्यों को आर्थिक रूप से विशेष सहयोग प्रदान करता है तथा उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में अपना योगदान देता है। यही कारण है कि बार-बार यह कहा जाता है कि केन्द्र को भारत के संविधान में बहुत शक्तिशाली बनाया गया है,जोकि समय की माँग भी है।

4.10 शब्दावली

विनियोजित- उचित या संगत, प्रोमिसरी नोट- वचन पत्र या इकरारनामा, हुंडिया-निर्गत आदेश, परिकल्पना- अवधारणा

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 13, **2.** 1951, **3.** विजय केलकर, **4.** योजना आयोग, **5.** वित्त आयोग, **6.** 1मार्च2001, **7.** 280, 8. राज्यों को अनुदान देकर व ऋण देकर, **9.** वित्त उत्तरदायित्व व बजट प्रबन्धन, **10.** 1952 से 1957

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप- हमारा संविधान।

2. डी0 डी0 बसु- भारत का संविधान।
3. उत्तराखण्ड शासन की रिपोर्ट- संतुलित समयबद्ध विकास, 5वीं वर्षगांठ।

4.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जगदीश शंकर शुक्ला- भारतीय संविधान तथा प्रशासन।
2. जैन व खन्ना- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व गणतंत्र का विकास।
3. त्रिलोक चन्द्र भट्ट- उत्तराखण्ड , राज्य आन्दोलन व नवीन इतिहास।

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित पर टिप्पणी दें-
   अ- कर निर्धारण व करों से प्राप्त आय का विभाजन।
   ब- केन्द्र व राज्य के बीच वित्तीय सम्बन्धों का संवैधानिक पहलू।
   स- सहायक अनुदान।
2. वित्त आयोग से आप क्या समझते हैं?
3. 13वें वित्त आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिशों पर एक लेख लिखिए।
4. विशेष श्रेणी के राज्यों पर निबन्ध लिखिये।

इकाई- 5 राज्यपाल और मुख्यमंत्री

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 राज्यपाल
5.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल
5.2.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य
5.2.2.1 कार्यकारिणी शक्तियाँ
5.2.2.2 विधायनी शक्तियाँ
5.2.2.3 अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ
5.2.2.4 न्यायिक शक्तियाँ
5.2.2.5 आपातकालीन शक्तियाँ
5.2.2.6 विवेकाधीन शक्तियाँ
5.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध
5.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
5.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति
5.3 मुख्यमंत्री
5.3.1 मुख्यमंत्री की शक्तियां
5.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य
5.3.3 मंत्रीपरिषद और व्यवस्थापिका
5.3.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व
5.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

भारत में जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर सभी राज्यों में शासन की वही पद्धति है, जो केन्द्रीय स्तर पर मान्य है। दूसरे शब्दों में सभी राज्यों में संसदीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में कार्यपालिका का एक प्रमुख है, जिसे राज्यपाल कहा जाता है। साथ में एक मन्त्रिपरिषद है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है जो राज्यपाल की सहायता करता है तथा परामर्श देता है। मन्त्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम से चलता है। राज्य की कार्यकारिणी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित है। आमतौर पर एक राज्य का एक राज्यपाल होता है, लेकिन कभी-कभी दो राज्यों का भी एक राज्यपाल होता है। यह व्यवस्था सन् 1956 में की गयी थी।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझ पायेंगे।
- राज्यपाल की शक्तियों और कार्यों की जानकारी ले सकेंगे।
- राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
- मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियों को समझ सकेंगे।
- राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच के सम्बन्धों को समझ सकेंगे।

5.2 राज्यपाल

संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। केवल भारत का ऐसा नागरिक जो 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो सकता है। संविधान राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कोई निश्चित योग्यता तय नहीं करता है। लेकिन साधारणतया विशिष्ट लोग इस पर नियुक्त किये जाते है। इसमें अवकाश प्राप्त राजनीतिक, सेना के पदाधिकारी, सेवी वर्ग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद् इत्यादि होते हैं।

5.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल

साधारणतया एक राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त होता है। वह राष्ट्रपति की मर्जी तक बना रहता है। अतः एक राज्यपाल पांच वर्ष से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल यदि स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है।

महाभियोग के द्वारा राज्यपाल को हटाने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही उसको हटाने में व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को उसके पद से हटाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। लेकिन पद के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार, पक्षपात पूर्ण व्यवहार, संविधान के उल्लंघन, नैतिक पतन आदि के आधार पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ राज्यों के राज्यपाल भी बदल दिये जाते है।

एक राज्यपाल अनेक बार राज्यपाल हो सकता है।

5.2.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संवैधानिक रूप से राज्यपाल की अनेक शक्तियाँ हैं, जिनमें कार्यकारिणी विधायनी तथा न्यायिक प्रमुख है। परन्तु यहाँ याद रखना होगा कि व्यवहार में राज्यपाल की यह शक्तियाँ नाम मात्र की है। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार हैं-

5.2.2.1 कार्यकारिणी शक्तियाँ

राज्यपाल की निम्नलिखित कार्यकारिणी शक्तियाँ हैं-

1. राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है।
2. महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।
3. राज्यपाल की मर्जी तक महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) अपने पद पर बना रह सकता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को बर्खास्त कर सकता है, लेकिन पदच्युत नहीं कर सकता।
4. यद्यपि राज्यपाल को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति इन न्यायधीशों को राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त करता है।
5. यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हो कि एंग्लो इण्डियन सम्प्रदाय का कोई सदस्य यथावत् निर्वाचित नहीं हो सकता, तो विधानसभा के लिए एक एंग्लो इण्डियन को मनोनीत कर सकता है।
6. यदि राज्य में विधान परिषद है तो राज्यपाल को विधान परिषद के 1/6 सदस्यों को नामित करने का अधिकार है। परन्तु ऐसे सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान,समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो।

5.2.2.2 विधायनी शक्तियाँ

राज्यपाल की विधायनी शक्तियाँ निम्नांकित हैं-

1. राज्यपाल राज्य व्यवस्थापिका का एक अंग है। वह सदन का सत्र बुलाता है अथवा व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सत्र को स्थगित कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधानसभा को भी भंग कर सकता है।
2. राज्यपाल को विधानसभा और विधानपरिषद के सत्रों को अलग अथवा संयुक्त रूप से सम्बोधित करने का अधिकार है। वह दोनों सदनों को संदेश भी भेज सकता है।
3. राज्यपाल राज्य व्यवस्था के सामने वार्षिक वित्त लेखा-जोखा (बजट) प्रस्तुत करने की संस्तुति देता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना वित्त विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।
4. राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते, जब तक कि राज्यपाल की अनुमति न मिले। जब एक विधेयक राज्यपाल के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह-
    - विधेयक को अपनी संस्तुति प्रदान कर सकता है और विधेयक कानून बन जाता है।
    - या वह विधेयक पर अपनी संस्तुति रोक सकता है और विधेयक कानून नहीं बनता।
    - या वित्त विधेयक को छोड़कर साधारण विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका के पास पुनर्विचार के लिए वापस भेज देता है। यदि पुनर्विचार के बाद व्यवस्थापिका विधेयक को राज्यपाल के पास भेजती है तो वे विधेयक पर संस्तुति देने के लिए बाध्य हैं।
    - वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लेता है। ऐसा विधेयक तब ही कानून होगा, जब राष्ट्रपति अपनी संस्तुति प्रदान करेंगे।

5.2.2.3 अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ

यदि व्यवस्थापिका के सदन सत्र में नहीं है और किसी विषय पर कानून बनाने की तुरन्त आवश्यकता है, इस सन्दर्भ में राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का वही प्रभाव और दर्जा होगा जो व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। राज्यपाल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी करता है जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में निहित हैं

अध्यादेश जारी करने की शक्ति राज्यपाल के औचित्य या स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति नहीं है। वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी करता है।

निम्न मामलों पर राज्यपाल तब तक अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जब तक पहले से उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न हो-

- ऐसा विषय जिससे सम्बन्धित विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका में प्रस्तुतिकरण से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो: या
- राज्यपाल ऐसे विषय से सम्बन्धित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता महसूस करता हो।
- राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश राज्य व्यवस्थापिका के सम्मुख तब रखना अनिवार्य होता है, जब उसका सत्र आरम्भ होता है और यदि 6 सप्ताह के भीतर वह अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है, तो वह समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो कानून बन जाता है।

5.2.2.4 न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों का सम्बन्ध ऐसे कानून से है, जिनका उल्लंघन कार्यपालिका अर्थात मंत्रीमंडल करता है। वह कानूनों का रखवाला है। राज्यपाल कठोर दण्ड को हल्के दण्ड में (कम्यूटेशन) बदल सकता है, सजा को माफ (रेमीशन) कर सकता है, वह सजा पाये व्यक्ति को राहत (रेस्पाइट) दे सकता है। लेकिन राज्यपाल का क्षमादान का अधिकार मृत्युदण्ड से सम्बन्धित नहीं है।

5.2.2.5 आपातकालीन शक्तियाँ

यदि राज्यपाल सन्तुष्ट है कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रहा है तो संविधान के अनुच्छेद- 356 के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है। जैसे ही राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल राज्य का प्रशासन संभाल लेता है। परन्तु राज्यपाल की यह शक्ति बड़ी विवादास्पद रही है। उस पर आरोप लगता रहता है कि वह अकसर अपने औचित्य का गलत प्रयोग करता है।

5.2.2.6 विवेकाधीन शक्तियाँ

राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ प्रयोग करने का अधिकार है। ऐसी शक्तियाँ न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर हैं। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को यह भी स्वतन्त्रता है कि वह तय करे कि उसे किस मामले पर विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना है और इस बारे में उसका निर्णय अंतिम है।

कुछ ऐसी शक्तियाँ जिनके प्रयोग के लिए राज्यपाल मन्त्रिपरिषद से परामर्श के लिए बाध्य नहीं है। सम्भव है उसका ऐसा कदम मन्त्रिपरिषद की इच्छा के विरूद्ध हो। उदाहरण के लिए-

- जब राज्यपाल अनुच्छेद- 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे।
- राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलता है।
- राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करके यह तय करता है कि राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत किस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाये।

कुछ राज्यपालों के पास अपने राज्यों से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्व भी हैं। इन राज्यों में नागालैण्ड, मणिपुर, आसाम, गुजरात और सिक्कम के राज्यपाल आते हैं।

5.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध

विधानसभा में बहुसंख्यक दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है। मुख्यमन्त्री की सलाह पर राज्यपाल अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। यदि मन्त्रिपरिषद विधान का विश्वास खो देती है तो राज्यपाल मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने की तथा मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त की शक्ति समय-समय पर विवादास्पद रही है। ऐसी स्थिति तब आती है जब विधानसभा में चुनाव के बाद बहुमत स्पष्ट न हो अथवा किसी समय विधानसभा में शासक दल में टूट-फूट हो और बहुमत स्पष्ट न हो, तब राज्यपाल अपने विवेक से काम लेता है। परन्तु उसका यह विवेक परिस्थितियों के अनुसार होता है, क्योंकि वह केन्द्र के प्रति वफादार होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में जब राज्य और केन्द्र में दो विपरीत दलों की सरकारे हों, तब वह केन्द्र के हितों को ध्यान में रखकर विवेक का प्रयोग करता है, जो किसी भी स्थिति में विवेकपूर्ण नहीं होता। ऐसी स्थिति में पीड़ित दल न्यायालय की शरण लेता है और कई बार राज्यपाल के पक्षपातपूर्ण रवैये की कड़ी आलोचना भी हुई है।

राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के मध्य टकराव का एक बड़ा कारण संविधान का अनुच्छेद- 356 है। केन्द्र में सत्ताधारी दल सदा ही राज्यों की ऐसी सरकारों को गिराने का प्रयास करता है, जहाँ राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के विपरीत होती हैं। यह काम केन्द्रीय सरकार अपने प्रतिनिधि राज्यपाल से लेता है। वह केन्द्र के इशारे पर दुविधापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर अनुच्छेद- 356 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता है, इससे राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच टकराव बढता है और संघात्मक सरंचना पर आंच आती है। यद्यपि इस व्यक्तिगत पसन्द को अक्सर न्यायपालिका ने नापसन्द किया है।

5.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

भारत में एक ओर संघात्मक व्यवस्था है तो दूसरी ओर संसदात्मक, जो केन्द्र मे भी है और राज्यों में भी। केन्द्र के समान राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान (हैड) है। कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है, जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद अपने सभी कृत्यों के लिये व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यह स्थिति बिल्कुल केन्द्र के समान है।

इन समानताओं के बावजूद, जो केन्द्र और राज्यों में पाई जाती है, राज्यपाल की स्थिति और भूमिका राष्ट्रपति की स्थिति के समान नहीं है। कारण है राज्यपाल की दोहरी भूमिका। एक ओर राज्यपाल राज्य शासन का मुखिया है तो दूसरी ओर वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है। यह एक विषम स्थिति है, क्योंकि संविधान में राज्यपाल की शक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि राज्यपाल को हटाने या उसको नियन्त्रित करने की शक्ति राज्य में निहित नहीं है। इस स्थिति ने राज्यपाल की कुर्सी को मजबूत किया है और वह केन्द्र में सत्ताधारी दल से सरलता से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप राज्य के सत्ताधारी दलों से उसका टकराव बढ़ जाता है ।सक्रिय अथवा अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञों ने इस पद पर पहुँचकर स्थिति को और गंभीर बनाया है।

वास्तव में अनुच्छेद- 356 का अक्सर दुरूपयोग करके राज्यपाल ने स्वंय को राज्य का एक संवैधानिक मुखिया कम और एक कुशल राजनीतिज्ञ अधिक सिद्ध किया है। इससे राज्य में अस्थिरता, दल-बदल और जोड़-तोड़ की राजनीति को बढ़ावा मिलता हैं।उदा हरण के लिये सन् 1960 से 1967 तक राज्यों में विरोधी दलों की ग्यारह बार सरकारें बर्खास्त की गई, जबकि सन् 1967 से 1977 तक 8 बार ऐसी सरकारें बर्खास्त की गई। 1977 के आम चुनावों के बाद केन्द्र में जनता दल की सरकार ने राज्यों में कांग्रेस की 9 राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया।

सन् 1980 में काग्रेस ने बदले में विरोधी दलों की ग्यारह राज्य सरकारों को अपदस्थ किया और यह सब कुछ केन्द्र ने राज्यपालों के माध्यम से कराया।

5.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

राज्य के शासनतंत्र में राज्यपाल की एक महत्वपूर्ण हैसियत है। यथार्थ में उससे राज्य में शासन के मुखिया की हैसियत से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है और इसलिये वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है, परन्तु उसे मात्र रबर की मोहर नहीं कहा जा सकता। राज्यपाल की स्थिति के बारे में संविधान में दो प्रावधान हैं। पहला- अनुच्छेद-159 के तहत राज्यपाल को जो शपथ लेनी होती है, उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि वह पूरी निष्ठा से अपने पद का निर्वाह करेगा, अपनी पूरी योग्यता से संविधान औरर कानून की रक्षा करेगा और राज्य के लोगों की सेवा में स्वंय को समर्पित करेगा। इस शपथ से यह स्पष्ट होता है कि लोगों की सेवा से सम्बन्धित उसकी सोच और मन्त्रिपरिषद की सोच में अन्तर हो सकता है, जो टकराव का कारण बन सकता है। दूसरा- अनुच्छेद- 163(1) स्पष्ट करता है कि अपने कार्यों के निष्पादन के लिये राज्यपाल को परामर्श और सहायता प्रदान करने के लिये एक मन्त्रिपरिषद होगी, लेकिन वहीं तक जहाँ राज्यपाल की स्वतन्त्र शक्तियों के निष्पापदन का प्रश्न न हो। स्वतंत्र शक्तियों के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा। अनुच्छेद- 163(2) पुनः व्यवस्था करता है कि राज्यपाल का कौन सा कार्य उसके क्षेत्राधिकार में आता है और कौन सा नहीं, यह राज्यपाल ही तय करेगा और वह जो भी करेगा उस पर जबाब तलब नहीं किया जायेगा।

प्रत्येक राज्यपाल परिस्थितियों के अनुसार अपने औचित्य की शक्ति का प्रयोग करता है, समान परम्पराऐं नहीं हैं। यद्यपि इस व्यवहार की आलोचना की गई है, लेकिन संवैधानिक दृष्टि से यह उचित है। राज्यपाल की हैसियत राजनीतिक है इसलिये पूरी निष्पक्षता के साथ उसका व्यवहार करना असम्भव है। वास्तव में अक्सर विधायक स्वंय ऐसी परिस्थितियां पैदा करते हैं, जहाँ राज्यपाल को बड़े कदम उठाने पड़ते हैं।

5.3 मुख्यमन्त्री

प्रत्येक राज्य में एक मन्त्रिपरिषद होती है, जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद का कार्य राज्यपाल को उसके कार्यों के निष्पादन के लिये सहायता करना और परामर्श देना है, लेकिन राज्यपाल के स्वविवेकी कार्य मन्त्रिपरिषद के क्षेत्राधिकार से बाहर है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है और उसके परामर्श से राज्यपाल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। आम या मध्यावधि चुनावों के बाद यदि विधानसभा में दल के नेता को बहुमत प्राप्त होता है तो राज्यपाल का कार्य सरल हो जाता है। वह बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त कर देता है। अगर किसी भी दल का बहुमत नहीं होता तो स्थिति जटिल हो जाती है और राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यही वह स्थिति है जो अक्सर विवादास्पद बन जाती है।

5.3.1 मुख्यमन्त्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री की हैसियत मन्त्रिपरिषद में महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वास्तव में मन्त्रियों की नियुक्ति वही करता है और उन्हें बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह अपने मंत्रियों में विभाग आवंटित करता है। वह कैबिनेट की मीटिंगों की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर मुख्यमन्त्री स्वंय अनेक विभाग अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त शासन के सभी विभागों का निरीक्षण करना भी मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व है।

भारतीय संविधान में मुख्यमंत्री की शक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु व्यवहार में राज्य में उसकी वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है। दूसरी ओर राज्यपाल के सन्दर्भ में संविधान की यह व्यवस्था है कि मुख्यमंत्री के कुछ उत्तरदायित्व हैं-

1. मुख्यमन्त्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य से सम्बन्धित प्रशासन तथा विधि प्रस्तावों से राज्यपाल को अपने निर्णयों के बारे में अवगत कराये।
2. मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों से सम्बन्धित प्रशासन के बारे में तथा विधि प्रस्तावों के बारे में यदि राज्यपाल कोई सूचना मांगे तो वह उसे उपलब्ध कराये तथा
3. राज्यपाल मुख्यमंत्री से ऐसे मामलों पर सूचना मांग सकता है, जिसका निर्णय मंत्री ने तो लिया है पर जिसे मन्त्रिपरिषद के सम्मुख न रखा गया हो।
4. मुख्यमन्त्री की एक महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि वह विधानसभा को भंग करने की सिफारिश राज्यपाल से कर सकता है।

5.3.2 मुख्यमन्त्री के कार्य

शक्तियों और कार्यों की दृष्टि से मुख्यमन्त्री की अपनी हैसियत उसके व्यक्तित्व में निहित है। यदि उसका व्यक्तित्व मजबूत है तो वह प्रभावशाली मुख्यमंत्री होता है। परन्तु सच यह है कि मुख्यमंत्री की सारी शक्तियाँ और कार्य मंत्री परिषद में निहित हैं, जिसका व्यक्तित्व सामुहिक है।

मन्त्रिपरिषद वास्तव में राज्य की मुख्य कार्यपालिका है। यह प्रशासन की नीतियों का निर्माण करती है। विधि निर्माण के कार्य को तैयार और प्रक्रिया आगे बढाती है और कानून पास हो जाते हैं तो उनके कार्यान्वयन का निरीक्षण करती है। कैबिनेट द्वारा वार्षिक बजट तैयार किया जाता है और विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी वित्तीय शक्तियाँ परिषद में निहित हैं, यद्यपि यह राज्यपाल के नाम से पहचानी जाती है।

संविधान ने राज्यपाल को व्यवस्थापिका के सत्र की अनुपस्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया है। परन्तु यथार्थ में यह शक्ति भी कैबिनेट के पास है। राज्यपाल व्यवस्थापिका केा संबोधित करता है तथा संदेश भेजता है, परन्तु उसका अभिभाषण कैबिनेट द्वारा तैयार किया जाता है। राज्यपाल को विधानसभा को बर्खास्त करने का अधिकार है, लेकिन इस अधिकार का प्रयोग भी मन्त्रिपरिषद करती है। ऐसा राज्य जिसमें विधान परिषद होती है, उसमें कुछ सदस्य नामित करने का अधिकार राज्यपाल को है, परन्तु व्यवहार में यह कार्य भी राज्यपाल कैबिनेट की सिफारिश पर करता है। इसी तरह राज्य की क्षमादान या क्षमा को कम करने की शक्ति भी मन्त्रि परिषद की सिफारिश पर आधारित है।

5.3.3 मन्त्रिपरिषद और व्यवस्थापिका

मन्त्रिरिषद के मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों से लिये जाते हैं और वे सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि एक मंत्री विधानसभा में पराजित हो जाता है तो सब को त्यागपत्र देना चाहिए। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। इसलिए सभी मंत्री व्यवस्थापिका के सदन पर एक-दूसरे का बचाव करते हैं।

व्यवस्थापिका सदस्य प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के माध्यम से मंत्रियों को नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे सरकार की कमियों और गलतियों को उजागर करते हैं। वे मंत्रालय के विरूद्ध स्थगन और निन्दा प्रस्ताव लाते हैं। अन्त में विधानसभा के सदस्य सरकार के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाते है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो गया, तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है। इसी तरह यदि सरकार द्वारा पारित और समर्थित विधेयक विधानसभा में

पराजित हो गया तो इसको अविश्वास का मत समझा जायेगा और सरकार को त्यागपत्र देना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रिपरिषद का अस्तित्व पूरी तरह सदन के विश्वास पर टिका होता है।

मन्त्रिपरिषद भी व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। वास्तव में व्यवस्थापिका में पूरी कार्यवाही को नियंत्रित करते है। अधिकांश विधेयक मंत्रालयों द्वारा लाये जाते हैं, क्योंकि उनको बहुमत दल का विश्वास प्राप्त होता है, यह विधेयक सफलता से पास हो जाते हैं। कोई भी ऐसा विधेयक जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता, पास नहीं हो सकता। संविधान के 52वें संशोधन ने जिस दल-बदल विरोध कानून कहा जाता है, मन्त्रिपरिषद की स्थिति को मजबूत किया है।

जब दल-बदल आम बात थी, राज्य के मंत्रियों के सिर पर तलवार लटकी रहती थी। यह अस्थायित्व का काल था लेकिन अब यदि कोई सदस्य दल बदलता है तो वह अपने सदन की सीट खो देता है। इससे दल-बदल की परम्परा समाप्त हुई है।

मन्त्रिपरिषद के हाथों में एक और ऐसा शक्तिशाली हथियार है जो व्यवस्थापिका को उसके नियंत्रण में रखता है। विधानसभा को भंग कराने का अधिकार मुख्यमंत्री के पास है। यदि उसके दल के सदस्य अनुशासनहीन होते हैं और सरकार के विरूद्ध मतदान करते हैं, तो मुख्यमंत्री विधानसभा को भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सीट खोने का भय सदस्यों को अनुशासित रखता है। फिर भी मिला-जुला मन्त्रिमण्डल सदा अस्थिर होता है और ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की स्थिति कमजोर होती है। यहाँ तक कि दल-बदल विरोधी कानून भी मिली-जुली सरकार को स्थिरता की गारण्टी नहीं दे सकता।

5.3.4 मुख्यमन्त्री का अपना व्यक्तित्व

मुख्यमंत्री की स्थिति बहुत कुछ हद तक उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सी0पी0एम0) के पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु एक लम्बे समय तक अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने बहुमत दल का विश्वास प्राप्त करके अपने पद पर बने रहे। उनका अपना दल, सी0पी0एम0 कभी केन्द्र में सत्ताधारी दल नहीं रहा।

कोई भी मुख्यमन्त्री जिसका प्रभावशाली व्यक्तित्व है, शक्तिशाली समझा जाता है। उसके सहयोगी उसके लिए वफादार होते हैं। ऐसी सरकार जनहित के कार्य करती है। वह केन्द्र के दबावों से मुक्त रहता और खुलकर काम करता है।

5.4 मुख्यमंत्री और राज्यपाल

मुख्यमंत्री और राज्यपाल के रिस्तों में अक्सर कडवाहट रहती है। इस कडवाहट का कारण हैं, दलीय द्वन्द। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है। जब केन्द्र में और राज्य में एक ही दल की सरकारें होती हैं, तब राज्यपाल और मुख्यमन्त्री में सामंजस्य बना रहता है। लेकिन जब केन्द्र और राज्य में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं तो टकराव की स्थिति आ जाती है। विशेष रूप से जहाँ राज्य में मिली-जुली सरकारें हैं, वहाँ राज्यपाल स्थिति का लाभ उठाकर राज्य सरकार को बर्खास्त करने का प्रयास करता है। ताजा उदाहरण उडीसा का जहाँ, भारतीय जनता पार्टी की येदुरप्पा की सरकार को राज्यपाल ने बर्खास्त करने का प्रयास किया।

सन् 1992 में भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों को केन्द्र के इशारे पर राज्यपाल ने बर्खास्त कर दिया। कारण था 6 दिस्मबर 1992 को अयोध्या के विवादित ढाँचे को कार सेवकों द्वारा ध्वस्त किया जाना। सरकारों को बर्खास्त करना एक राजनीतिक फैसला था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि मध्य प्रदेश में बी0जे0पी0 सरकार की बर्खास्तगी गैर-कानूनी थी, क्योंकि राज्यपाल ने केन्द्र को जो रिपोर्ट भेजी थी, वह पर्याप्त रूप में यह सिद्ध नहीं करती थी कि राज्य में सरकार संविधान के अनुसार चलने में असफल हो गयी है। लेकिन

जब यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो उसने यह फैसला दिया कि राज्यपालों का फैसला, जो वास्तव में कांग्रेस सरकार का फैसला था वह औचित्यपूर्ण था, क्योंकि बर्खास्तगी का आधार ''धर्म निरपेक्षता'' था। जो भारतीय संविधान की मूल आत्मा है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि तीनों राज्यों की बी0जे0पी0 सरकारें अपना धर्मनिरपेक्ष आचार खो चुकी थी, इसलिए उनका बना रहना संविधान की आत्मा के विपरीत था।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से राज्यपाल को अपने औचित्य की शक्ति को सशक्त करने का और अवसर मिला और इसका एक नतीजा यह निकला कि मुख्यमन्त्री, राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व अपनी पसंद और नापसंद की बात करने लगे।

मुख्यमन्त्रियों ने भी सरकारी आयोग का हवाला दिया। सरकारी अयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यपाल अपने पद से सेवानिवृत होने के बाद किसी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेगा। इस सिफारिश को अंतर्राज्यपरिषद ने दिसम्बर 1991 में स्वीकार कर लिया। दूसरी सिफारिश यह थी कि राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य के मुख्यमन्त्री से सलाह ली जाये।

अक्सर यह देखा गया है कि राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद राज्यपाल सक्रिय राजनीति में दाखिल हो गये, मुख्यमन्त्री बनाये गये, चुनाव लड़ा और संसद सदस्य बने तथा अन्य लाभ के पदों पर नियुक्त किये गये। इसका नतीजा यह निकलता है कि राज्यपाल एक निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं करते और परिणाम स्वरूप राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य खटास उत्पन्न होती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है?
2. राज्यपाल की नियुक्त हेतु न्यूनतम आयु क्या हो?
3. राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता किस अनुच्छेद के तहत होती है?
4. भारत में एकात्मक शासन है या संघात्मक?
5. राज्य में मंत्रिपरिषद का मुखिया कौन होता है?
6. राज्य में संवैधानिक प्रधान कौन होता है?
7. दलबदल विरोधी कानून सर्वप्रथम किस संवैधानिक संशोधन द्वारा बनाया गया?
8. अयोध्या का विवादित ढांचा कब गिराया गया?

5.5 सारांश

भारत में संसदीय व्यवस्था है, केन्द्र में भी और राज्यों में भी। राज्यों में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त है- राज्यपाल, जो नियुक्त है और मुख्यमंत्री, जो निर्वाचित है। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है और राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन मुख्यमन्त्री जनता का प्रतिनिधि है और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए मुख्यमन्त्री राज्यपाल से अधिक महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल की जो शक्तियाँ हैं, वह संवैधानिक है। लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमन्त्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है, इसलिए वह अधिक सशक्त है।

मन्त्रिपरिषद जो एक सामूहिक उत्तरदायित्व वाली संस्था है। मुख्यमंत्री इस संस्था को नेतृत्व करता है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। अनुच्छेद-356 का प्रयोग करके अक्सर राज्यपाल को बदनामी मिली है।

सशक्त मुख्यमंत्री वह है, जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। उत्तर प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री पं0 गोविन्द वल्लभ पंत अदम्य साहस और अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। वह एक कुशल वक्ता और कुशाग्र बुद्धि के धनी थे।

राज्यपाल बडी गरिमा का पद है। उदाहरण उत्तर प्रदेश की पहली राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने इस पद को गौरवान्वित किया है।

राज्य में मुख्यमन्त्री के कार्य वही हैं, जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

5.6 शब्दावली

कन्वेंशन- परम्परा, रेमीशन- सजा को कम करना या उसका स्वरूप बदलना, रेपरीव- सजा माफ करना या टालना, डिसक्रीशन- छूट की स्वतंत्रता, रेस्पाइट- सजा में राहत देना

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. राष्ट्रपति, **2.** 35 वर्ष, **3.** अनुच्छेद- 356, **4.** संघात्मक, **5.** मुख्यमंत्री, **6.** राज्यपाल, **7.** 42वें संवैधानिक संशोधन, **8.** 6 दिसम्बर 19192

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दुबे, एस0एन0- भारतीय संविधान और राजनीति।
2. माहेश्वरी, श्रीराम- स्टेट गवर्नमेंटस इन इण्डिया।
3. पाण्डे, लल्लन बिहारी- दि स्टेट एक्जीक्यूटिव।
4. पायली, एम0वी0- इण्डियाज कान्सटीटयूशन।

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ0 रूपा मंगलानी।
2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति- महेन्द्र प्रताप सिंह।
4. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा।
5. भारतीय लोक प्रशासन- बी0 एल0 फड़िया।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका कौन है और उसका स्वरूप क्या है?
3. मंत्री परिषद क्या है? मुख्यमंत्री से उसके सम्बन्ध क्या है?
4. मुख्यमंत्री और व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 6 राज्य सचिववालय, मंत्रीमण्डलीय सचिवालय और मुख्य सचिव

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 सचिवालय का अर्थ
- 6.2.1 सचिवालय की स्थिति और भूमिका
- 6.2.2 सचिवालय की संरचना
- 6.2.3 राज्य सचिवालय के विभाग
- 6.2.4 सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर
- 6.2.5 नीति और प्रशासन
- 6.2.6 नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका
- 6.2.7 सचिवालाय एक समालोचना

6.3 मंत्रीमण्डलीय सचिवालय
6.4 मुख्य सचिव
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

सरकार के दो घटक होते हैं। राजनीति और प्रशासकीय दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वह राजनीतिक घटक नीतियां बनाता है। नीतियों से सम्बन्धित कानून बनाता है और निर्णय लेता है। प्रशासकीय घटक इन नीतियों, निर्णयों और कानूनों को क्रियान्वित करता है। राजनीतिक घटक प्रशासकीय घटक की सहायता के बिना नीतियों और कानूनों का निमार्ण नहीं कर सकता। जहाँ प्रशासकीय प्रक्रिया चलती है, उसे सचिवालय कहा जाता है। इस इकाई में इसी राज्य सचिवालय की संरचना और कार्यों पर बहस की गयी है। यह समझाया गया है कि सचिवालय विभागीय पद्धति क्या है? तथा सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर क्या है? इसके अतिरिक्त राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका स्थिति और कार्यों को भी समझाया गया है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्य सचिवालय का अर्थ, महत्व और उसकी भूमिका समझ सकेंगे।
- सचिवालय की सीधी संरचना को और राज्य सचिवालय में विभागीयकरण की पद्धति समझ पायेंगे।
- सचिवालय विभाग, मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय तथा कार्यकारिणी विभाग के प्रमुख का अंतर समझ सकेंगे।

- आपको शब्द 'नीति' और 'प्रशासन' के अर्थ समझ में आयेंगे और यह जान सकेंगे कि नीति और प्रशासन एक विवेकशील प्रक्रिया है या सत्ता प्रक्रिया है।
- राज्य सचिवालय व्यवस्था में मुख्य सचिव के महत्व को और उसकी भूमिका को समझ पायेंगे।

6.2 सचिवालय का अर्थ

राज्य स्तर पर शासन के तीन घटक होते है- मंत्री, सचिव तथा कार्यपालिका प्रमुख, अंतिम को अक्सर निर्देशक कहा जाता है। मंत्री और सचिव मिलकर सचिवालय का निर्माण करते हैं, जबकि कार्यपालिका प्रमुख के कार्यालय को निदेशालय कहा जाता है।

शाब्दिक तौर पर सचिवालय का अर्थ है, सचिव का कार्यालय। यह तब अस्तित्व में आया जब भारत में शासन सचिवों द्वारा चलाया जाता था। स्वतंत्रता के बाद शासन करने की शक्ति जनप्रतिनिधि मंत्रियों के हाथ में चली गयी और इस तरह मंत्रालय सत्ता का केन्द्र बन गया। नई परिस्तिथियों में शब्द 'सचिवालय' मंत्री के कार्यालय का पर्यायवाची बन गया है, क्योंकि मंत्री को सलाह देने का कार्य सचिव करता है। इसलिए मन्त्रालय में मंत्री के बाद सचिव प्रमुख होता है और अपने स्थाई चरित्र के कारण वह अधिक महत्वपूर्ण होता है। सरल शब्दों में सचिवालय वह भवन है जिसमें मंत्री और सचिव के कार्यालय होते हैं। मंत्री राजनीतिक प्रमुख होता है और सचिव प्रशासकीय प्रमुख।

6.2.1 सचिवालय की स्थिति और भूमिका

राज्य प्रशासन की सर्वोच्च स्तर की हैसियत से सचिवालय का कार्य नीति-निर्माण में राज्य सरकार की सहायता करना तथा विधायनी कार्यों में उसे सहयोग करना है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने राज्य प्रशासन पर अपनी जो रिर्पोट दी है वह इस प्रकार है-

- नीति-निर्माण, समय-समय पर नीतियों के संशोधन तथा विधायनी उत्तरदायित्वों के निर्वाह में सचिवालय सहायता प्रदान करे।
- विधायन, नियमों और अधिनियमों का प्रारूप तैयार करे।
- नीतियों और योजनाओं में समन्वय स्थापित करे, उनके क्रियान्वन पर नजर रखें तथा परिणामों की समीक्षा करे।
- बजट तैयार करे और व्यय को नियन्त्रित करे।
- भारत सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों से सम्पर्क बनाये रखे।
- प्रशासकीय तंत्र के संचालन पर पैनी नजर रखे तथा कार्यकर्ता वर्ग की योग्यता तथा दक्षता को विकसित करे।

नीति-निर्माण तथा नीति क्रियान्वन दो अलग पहलू है। इनको एक-दूसरे से पृथक रहना चाहिए । यह प्रशासकीय दर्शन का मूल मंत्र है। यदि ऐसा होता है तो उसके अनेक लाभ हैं-

- यदि नीति-निर्माण उपकरण, नीति क्रियान्वयन से पृथक रहता है, तो नीति-निर्माण की प्रक्रिया शासन के वृहत लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है न कि संकुचित, वर्गीय हितों की ओर।

- नीति-निर्माण के लिए समय चाहिए। यदि नीति-निर्माण और उसका क्रियान्वयन एक ही हाथ में होगा तो नीति-निर्माण प्रक्रिया में विलम्ब होगा। नीति-निर्माण का सम्बन्ध भावी योजनाओं से है। लेकिन इस पर ध्यान न देकर दिन-प्रतिदिन के कामों पर ध्यान अधिक लगाना राज्य के लिए हानिकारक होता है।
- सचिवालय, मंत्री का एक निष्पक्ष परामर्शदाता है। सचिव, शासन का सचिव है न कि मंत्री का। वह मंत्री के हितों को ध्यान में न रखकर, राज्य के हितों को ध्यान में रखता है। सचिवालय से जो प्रस्ताव आये वे दूरगामी परिणामों के होते है। इसलिए प्रस्तावों को संतुलित होना चाहिए।
- नीति-निर्माण तत्कालीन प्रशासन से पृथक होना चाहिए तथा दिन-प्रतिदिन का कार्य अन्य निकायों पर छोड़ना चाहिए। इससे सत्ता हस्तान्तरण निश्चित होता है।

यहाँ सचिवालय की वृहत भूमिका को समझना अनिवार्य है-

- सचिवालय की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नीति-निर्माण में है। यह मन्त्रियों को सरकारी नीतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करता है। ऐसा वह दो तरीके से करता है, प्रथम- सचिव नीति-निर्माण के लिए अनिवार्य आंकड़ों और सूचना उपलब्ध कराता है। दूसरे- सचिव मन्त्रियों के सामने उन योजनाओं को रखता है, जिनके वायदे मन्त्रियों ने जनता से किये थे। वह इन योजनाओं का पूरा प्रारूप तैयार करता है ।
- सचिवालय मन्त्रियों को उनके विधायनी कार्यों में सहायता प्रदान करता है। विधायन के प्रारूप जो मंत्री व्यवस्थापिका के पटल पर रखते है, सचिवों के द्वारा तैयार किये जाते है।
- व्यवस्थापिका में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मन्त्रियों को जो सूचना चाहिए, सचिव ऐसी तार्किक सूचनाओं से मन्त्रियों को अवगत कराता है। सचिव उन सूचनाओं को भी उपलब्ध कराता है जो व्यवस्थापिका की समितियाँ चाहती है ।
- सचिवालय एक संस्थागत स्मरण शक्ति (मेमोरी) के रूप में काम करता है। इसका अर्थ है कि पैदा होने वाली समस्याओं का परीक्षण साक्ष्यों की रौशनी में करना। सचिवालय में जो दस्तावेज और फाइलें सुरक्षित होती हैं, वे संस्थागत स्मरण शक्ति का काम करती हैं और किसी मामले के निबटारे में सहायता प्रदान करती है।
- सचिवालय एक सरकार तथा दूसरी सरकार के मध्य सूचना एवं संचार का माध्यम है। यह एक सरकार तथा योजना आयोग और वित्त आयोग के मध्य भी ऐसा ही माध्यम है।
- अंत में सचिवालय नीति-निर्माण के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करता है और क्रियान्वयन को क्षेत्रीय निकायों के माध्यम से संचालित करता है।

6.2.2 सचिवालय की संरचना

सीधे रूप में (लम्बात्मक) किसी सचिवालय विभाग की दो प्रकार की पद सोपानीय बनावट होती है। एक पदाधिकारी तथा दूसरा कार्यालय।

सचिवालय की संरचना में पदाधिकारी पारम्परिक रूप में अधिकारियों की पदसोपानीय व्यवस्था के तीन स्तर होते हैं। इसके अन्तर्गत, विशिष्ट रूप से एक प्रशासकीय प्रमुख के अन्तर्गत होता है, जिसे सचिव कहते हैं। सचिव की सहायता के लिए उप-सचिव तथा सहायक सचिव होते हैं, क्योंकि विभिन्न सचिवालय विभागों का काम बढ़ गया है, इसलिए सचिव और उपसचिव के मध्य, कुछ राज्यों में अतिरिक्त सचिव और संयुक्त सचिव भी होते हैं।

भारत में सचिवालय पद्धति की एक विशेषता यह है कि कार्यालय के दो भाग होते हैं। पहला, उच्चतर अधिकारियों का एक संक्रमण (आने-जाने वाला) संवर्ग (पदाधिकारियों का समूह) तथा दूसरा, स्थायी कार्यालय। इसका अर्थ

यह है कि प्रत्येक विभाग में उच्च प्रशिक्षित पदाधिकारी आते-जाते रहते हैं, लेकिन कार्यालय स्थायी कर्मचारियों से सम्पन्न होता है। यह कार्यालय सचिवालय विभाग की निरन्तरता को बनाये रखता है। कार्यालय में अधीक्षक या अनुभाग अधिकारी, सहायक, उच्चतर और निम्नतर खण्ड लिपिक, स्टेनों टाइपिस्ट (सम्पूर्ण कमप्यूटर नेटवर्क में प्रशिक्षित सेवी वर्ग) इत्यादि आते हैं। कार्यालय, अधिकारियों को वह सामग्री जुटाता है जो नीति-निर्माण के लिए आवश्यक होती हैं। वह क्रियान्वयन का कार्य दिन-प्रतिदिन के हिसाब से निबटाता है।

सचिवालय के एक विभाग की संगठनात्मक संरचना निम्न प्रकार की होती है- विभाग- सचिव, खण्ड- अतिरिक्त/संयुक्त सचिव, मुख्य विभाग- उप सचिव/निदेशक, कार्यालय- सह सचिव और अनुभाग- अनुभाग अधिकारी। (अंग्रेजी में डिपार्टमेंट, विंग, डिवीजन, ब्रांच सेक्शन)

अनुभाग सबसे निचली संगठनात्मक इकाई है जो अनुभाग अधिकारी के अन्तर्गत रहती है। अनुभाग में सहायक, लिपिक, टाइपिस्ट, कम्पयूटर संचालक आते हैं। वास्तव में अनुभाग ही कार्यालय है। दो अनुभागों से ब्रांच बनती है, यह एक सह सचिव के अन्तर्गत होती है। दो ब्रांचों से एक डिवीजन या मुख्य विभाग बनता है जो उप-सचिव के अन्तर्गत आता है। जब एक विभाग का काम बढ जाता है तब कई खण्ड या विंग बनाये जाते हैं जो अतिरिक्त सचिव या संयुक्त सचिव के अन्तर्गत होते है। संगठनात्मक पदसोपान पर सचिव होता है जो विभाग का कार्यभार संभालता है।

6.2.3 राज्य सचिवालय के विभाग

राज्य सचिवालय के संगठनात्मकता की प्रकृति को बनाए रखने के लिए अनेक विभाग सम्मिलित रहते हैं, जिसमें- सामान्य प्रशासन विभाग, गृह विभाग, राजस्व विभाग, खाद्य एवं कृषि विभाग, वित्त और योजना विभाग (योजना खण्ड), वित्त और योजना विभाग (वित्त खण्ड), विधि विभाग, सिंचाई और विद्युत विभाग, चिकित्सा और स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग, उद्योग विभाग, व्यवस्थापिका विभाग, पंचायत राज्य विभाग, नियंत्रक क्षेत्र विकास विभाग, परिवहन, सड़क और भवन विभाग, आवास और नगरपालिका प्रशासन तथा शहरी विकास विभाग, श्रम, रोजगार और तकनीकि शिक्षा विभाग, सामाजिक कल्याण विभाग और वन एवं ग्रामीण विकास विभाग।

6.2.4 सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर

सचिवालय विभागों को कार्यकारिणी विभागों से अलग करके देखा जाना चाहिए। सचिवालय का कार्य राजनीतिक कार्यकारिणी को उसके कार्यों में सहायता करना तथा परामर्श देना है। कार्यकारिणी विभागों के अध्यक्ष जिनको निदेशक कहा जाता है, राजनीतिक कार्यकारिणी द्वारा निर्मित नीतियों को क्रियान्वित करते हैं। दूसरे शब्दों में सचिव नीति-निर्माण में सहायता करता है और निदेशक नीति क्रियान्वयन में।

प्रत्येक सचिवालय विभाग के अन्तर्गत अनेक कार्यकारिणी विभाग आते हैं। लेकिन यहाँ यह याद रखना होगा कि सभी सचिवालय विभागों में कार्यकारिणी विभाग नहीं आते हैं। कुछ सचिवालय विभागों का सम्बन्ध केवल परामर्शदाता तथा नियन्त्रक के रूप में होता है। उदाहरण के लिए कानून और वित्त विभाग ऐसे ही हैं।

सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग जिनका उद्देश्य नीति-निर्माण तथा नीति क्रियान्वयन से होता है, वास्तव में मन्त्रिपरिषद के व्यक्तित्व का विस्तार है। दूसरे अर्थों में ये दोनों मन्त्रियों का मस्तिष्क और हाथ है। मन्त्रिपरिषद इनके माध्यम से सोचता है और निर्णय लेता है तथा इनके माध्यम से अपनी नीतियों को क्रियान्वित कराता है।

सचिवालय विभाग के मुखिया सेवीवर्ग (आई0ए0एस0) के होते हैं, जबकि कार्यकारिणी विभाग के प्रमुख विशिष्ट होते हैं। अर्थात विशिष्ट प्रमुख सामान्य प्रमुखों के निरीक्षण में काम करते है। दूसरे शब्दों में निदेशक सचिव के

निरीक्षण में कार्य करता है। उदाहरण के लिए उत्तराखण्ड में शिक्षा निदेशक जो शिक्षा में विशिष्ट होता है, सचिव के निरीक्षण में काम करता है जो आई0ए0एस0 होता है।

6.2.5 नीति और प्रशासन

हम सचिवालय तथा निदेशालय की स्पष्ट भूमिका के बारे में बता चुके है। दोनों एक-दूसरे से पृथक हैं। अब सवाल यह उठता है कि वास्तव में क्या दोनों एक-दूसरे से पृथक हैं। उत्तर यह है कि अवधारणात्मक स्तर पर वे एक-दूसरे से पृथक हैं। दोनों को स्पष्ट घटनाक्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर नीति और प्रशासन एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। वास्तव में यह कहना कठिन है कि कहाँ नीति का अन्त होता है और कहाँ से प्रशासन का आरम्भ?

नीति का सम्बन्ध राजनीतिक चुनावों से होता है और वह वृहत मूल्यों के इर्द-गिर्द घूमती है, जबकि प्रशासन का सम्बन्ध कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से है। अतः प्रशासन क्रियान्वयन की समीक्षा, संगठनात्मक संरचनाओं के निर्माण, संगठन में भर्ती, क्रियाओं में समन्वय, निदेशन, नियन्त्रण और प्रोत्साहन से सम्बन्धित है।

प्रशासन, प्रशासकों का दायरा है जो उन नीतियों को क्रियान्वित करते हैं जो कानून में निहित है। एक अवधारणा यह है कि राजनीति, प्रशासन से परे होनी चाहिए। मेक्स वेबर ने नीति और प्रशासन के पृथकता के औचित्य को स्वीकार किया है। उसका तर्क है कि राजनीतिज्ञों के उत्तरदायित्व सेवीवर्ग के उत्तरदायित्वों से पृथक होते हैं। राजनीति का सार है एक बात पर जमे रहना, नीतियों की वैयक्तिक जिम्मेदारी लेना और राजनीतिक भूमिका अदा करना। प्रशासन का सार है राजनीतिक सत्ता के आदेश का विवेकपूर्ण क्रियान्वयन, भले ही वह प्रशासक को गलत लगे। प्रशासक राजनीतिक तौर पर तटस्थ रहता है। वह, उन कार्यों को करता है जो उससे करने को कहा जाता है। फिर भी शासकीय विषमताओं के कारण प्रशासकों को नीति-निर्माण या राजनीतिक निर्णयों में सम्मिलित होना पड़ता है। इसलिए व्यावहारिक रूप से नीति और प्रशासन में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन है। इसके मुख्य कारण हैं-

1. प्रशासक अपने कार्य में दक्ष होते हैं, जिसका प्रयोग नीति-निर्माण में राजनीतिज्ञ करते हैं, क्योंकि प्रशासक स्थायी होते हैं इसलिए वह समस्याओं को अच्छी तरह समझते हैं। राजनीतिज्ञ आते-जाते रहते है, इसलिए प्रशासकों पर निर्भर रहते है। अतः प्रशासकों का अपना महत्व है।
2. इसके अतिरिक्त प्रशासक तथ्यों, आंकड़ों और सूचनाओं से सम्पन्न होते हैं। एक विशेष क्षेत्र में उनकी बुद्धि कुशाग्र और पैनी होती है। राजनीतिज्ञों को नीति-निर्माण के लिए आंकडे और तथ्य चाहिए होते हैं।
3. सरकारें डाक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों तथा अर्थशास्त्रियों को भी प्रशासक नियुक्त करती है जो सरकारों को अपना ज्ञान और दक्षता प्रदान करते है। वे तकनीकि ज्ञान प्रदान करते हैं।
4. प्रशासक योग्यता के आधार पर चुनकर आते हैं। इसलिए उनका महत्व राजनीतिज्ञों से अधिक होता है और वे नीति-निर्माण का एक अभिन्न अंग बन जाते हैं।

6.2.6 नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका

सेवीवर्ग की दक्षता में वृद्धि, सरकारी कार्यों में बढोत्तरी तथा प्रशासकीय जटिलता ने राजनीतिज्ञों को पूरी तरह प्रशासकों पर निर्भर कर दिया है। वे नीति-निर्माण में बिना प्रशासकों की सहायता के एक कदम भी आगे नहीं चल सकते। इसके अनेक कारण हैं -

नीति-निर्माण तथ्यों, आंकड़ों, सूचनाओं इत्यादि के आधार पर होता है । यह नौकरशाही द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। इसके लिए राजनीतिज्ञ प्रशासकों पर निर्भर रहते हैं।

सेवीवर्ग अपने प्रशासकीय अनुभव के आधार पर अनुभवहीन राजनीतिज्ञों को प्रशासकीय, तकनीकि और वित्तीय सम्बन्धी परामर्श देता है जो नीति-निर्माण के व्यावहारिक पहलू हैं।

सेवीवर्ग विधायन (विधेयक) का प्रारूप तैयार करते हैं। मन्त्रालय की स्वीकृति के बाद यह विधेयक व्यवस्थापिका के पटल पर उसकी स्वीकृति के लिए रखे जाते हैं। अर्थात नीति-निर्माण या विधायन की पहल प्रशासक ही करते हैं।

प्रशासकों के पास विवेक के प्रयोग की स्वतंत्रता होती है। कहाँ किस रूप में और किसे किसी बात को चुनने का अधिकार प्रशासक को है। इस तरह प्रशासक अतिरिक्त विधि निर्माता होते हैं। राजनीतिज्ञों को तथा व्यवस्थापिका को प्रशासकों के फैसले को मानना पड़ता है। विधायन का कार्य बड़ा तकनीकी होता है और यह तकनीकी ज्ञान केवल दक्ष प्रशासकों को ही होता है। अतः राजनीतिज्ञों का प्रशासकों पर निर्भर रहना एक मजबूरी है। दूसरे कब, कहाँ और किस स्थिति में कानूनों को लागू करना होता है, यह भी प्रशासक की विवेक की शक्ति पर निर्भर है। अतः यहाँ यह कहना उचित होगा कि राजनीतिज्ञ तो नीतियों की मात्र रूप-रेखा तैयार करते हैं, वास्तविक नीति-निर्माता और विधि निर्माता प्रशासक ही है।

6.2.7 सचिवालय एक समालोचना

वर्तमान समय में सचिवालय की अनेक बिन्दुओं पर आलोचना होती है। विचारात्मक दृष्टि से सचिवालय का औचित्य है। यह श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करता है। श्रम का विशिष्टीकरण होता है। यह नीति-निर्माण और नीति क्रियान्वयन को पृथक करता है, जिससे केन्द्रीयकरण हतोत्साहित होता है।

लेकिन व्यवहार में कहानी कुछ और है। सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर है। सचिवालय के आचरण से सचिवालय और निदेशालय में तनाव पैदा होता है। तनाव के कारण अनेक हैं -

- सचिवालय का रूख विस्तारवादी है। अर्थात यह उन कार्यों को करता है जो इसके नहीं है। यह मात्र नीति-निर्माण तक सीमित नहीं रहता है। यह क्रियान्वयन में भी हस्तक्षेप करता है। इससे क्रियान्वयन अभिकरणों की सत्ता कमजोर होती है।
- सचिवालय सत्ता का हस्तान्तरण करने से हिचकिचाता है। परिणाम स्वरूप नीति क्रियान्वयन में विलम्ब होता है। सारा समय सचिवालय से परामर्श करने और स्वीकृति प्राप्त करने में लग जाता है।
- कार्यकारिणी विभागों द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों की जाँच सचिवालय में लिपिक स्तर पर होती है ,जो विलम्ब का कारण होता है। यह अनावश्यक है, क्योंकि जाँच निदेशालय स्तर पर अच्छी तरह होती है।
- सामान्यज्ञों (जेनरलिस्ट) द्वारा, विशेषज्ञों (स्पेशलिस्ट) पर नजर रखना, उनके प्रस्तावों का निरीक्षण करना इस दौर में अतार्किक है।

इस स्थिति ने सचिवालय को शासकीय सत्ता का केन्द्र बना दिया है। जिसकी वजह से सचिवालय तथा निदेशालय में तनाव बना रहता है। लेकिन सचिवालय को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। उसके पक्ष में भी अनेक तर्क दिये जा सकते हैं-

- लोक प्रशासकीय व्यवस्था में सचिवालय एक अनिवार्य संस्था है। अपनी दुर्बलताओं के बावजूद सचिवालय ने प्रशासन को सन्तुलन, स्थायित्व और निरन्तरता प्रदान की है। वह मन्त्रालय तन्त्र का केन्द्रीय बिन्दु है। उसके माध्यम से अन्तःमन्त्रालय समन्वय पैदा होता है, जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व के लिए अनिवार्य है।

- सचिवालय व्यवस्था नीति-निर्माण को, नीति क्रियान्वयन से पृथक करने में सहायता करती है। इसने श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण और सत्ता के हस्तान्तरण को सुलभ किया है।
- सचिवालय ने स्वयं को नीति क्रियान्वयन से मुक्त रखा है, उसके पास राज्य के बृहत हितों की पूर्ति के लिए दूरदर्शी कार्यक्रम तैयार करने का पर्याप्त समय होता है।
- मन्त्री नीति-निर्माण के तकनीकी पहलुओं से अनभिज्ञ होता है। पूरी तरह सचिवों पर निर्भर रहता है जो उसको तार्किक वस्तुगत परामर्श देते हैं। इस तरह मन्त्री विशेषज्ञ के चंगुल से बच जाता है।
- सचिवालय उन कार्यक्रमों का वस्तुगत मूल्यांकन करता है, जो क्षेत्रों में क्रियान्वित होते हैं। यह कार्यकारिणी संस्थाओं पर नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि जो कार्य वे करती है, उनका समीक्षक उन्हें नहीं बनाया जा सकता।

कुल मिलाकर सचिवालय एक उपयोगी संस्था है। इसने समय की मांग को पूरा किया है। सचिवालय का स्थान कोई संस्था नहीं ले सकती। सचिवों की सेवा अवधि के स्थायित्व ने इस संस्था को शक्ति, तेजस्विता और गतिशीलता प्रदान की है।

6.3 मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय

सचिवालय और मन्त्रिमण्डल के मध्य के कार्यालय को मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय कहा जाता है। यह एक कर्मचारी (स्टाफ) समूह है, जिसकी नीति-निर्माण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण समन्वयक की भूमिका होती है। यह मुख्यमन्त्री के निर्देशन में कार्य करता है। मुख्यमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों के निजी सचिव और उनके कार्यालय इसका निमार्ण करते हैं। मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की परम्परा सर्वप्रथम सन् 1948 में पड़ी, जब केन्द्रीय कैबिनेट ने आर्थिक और सांख्यिकी समन्वय इकाई को केन्द्रीय कैबिनेट का एक अंग बना दिया है। इसका उद्देश्य विभिन्न मन्त्रालयों, विभागों से तत्कालीन सांख्यिकी इकाइयों से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करके समय-समय पर कैबिनेट के सामने रखना था। इसका कार्य विभिन्न मन्त्रालयों के कार्यालयों को समन्वित करके परामर्श देना भी था।

मन्त्रिमण्डल की सक्षमता बहुत कुछ हद तक मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। इसका मुख्य कार्य कैबिनेट की नीतियों के लिए एक अर्थपूर्ण कार्यक्रम (ऐजेन्डा) तैयार करना होता है तथा तार्किक कार्यवाही के लिए अनिवार्य सूचना तथा सामग्री प्रदान करना होता है। इसके साथ ही इसका कार्य कैबिनेट और समितियों की बहसों और निर्णयों का लेखा-जोखा रखना भी होता है।

मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल और राज्यपाल के मध्य एक संवाद माध्यम है। वह सभी मन्त्रालयों से सम्बन्धित कार्यक्रम तय करता है तथा उन्हें मन्त्रालयों को आवंटित करता है। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय कैबिनेट समितियों को कार्यालयी सहायता प्रदान करता है।

संसदीय व्यवस्था में समितियों (कमेटीज) का बड़ा महत्व है। यह समितियाँ अन्तः मन्त्रालयों के मामलों की समीक्षा करती हैं और उसके नतीजों से शासन को अवगत कराती हैं। मन्त्रिमण्डलीय सचिव इन समितियों की अध्यक्षता करता है तथा लिये गये निर्णयों की सिफारिश सरकार से करता है।

6.4 मुख्य सचिव

प्रत्येक राज्य में एक मुख्य सचिव होता है। यह अधिकारी राज्य सचिवालय का केन्द्रीय बिन्दु होता है। यह सचिवालय के सभी विभागों को नियन्त्रित करता है। यह मात्र समानों में प्रथम ही नहीं है, यह सचिवों के प्रमुख है। राज्य प्रशासन में उसकी विभिन्न भूमिकाएं हैं और यही उसकी सर्वोच्च स्थिति निश्चित करती है।

मुख्य सचिव, मुख्यमन्त्री और राज्य कैबिनेट सचिव का परामर्शदाता होता है। वह सामान्य प्रशासन विभाग का मुखिया होता है। जिसका राजनैतिक मुखिया मुख्यमन्त्री होता है। राज्य प्रशासन में इसकी स्थिति अद्वितीय है। राज्य में जो कार्य वह करता है, केन्द्र में वही काम समान स्तर के तीन प्रमुख करते हैं अर्थात कैबिनेट सचिव, गृह सचिव तथा वित्त सचिव। मुख्य सचिव राज्य में सेवीवर्ग का भी प्रमुख है। वह राज्य सरकार, केन्द्र तथा अन्य राज्य सरकारों के मध्य संचार माध्यम है। वह सरकार का प्रमुख प्रवक्ता है। वह राज्य प्रशासकीय व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। पूरी प्रशासकीय व्यवस्था में उसके स्तर का कोई अधिकारी नहीं होता है।

यहाँ एक विशेष बात यह है कि मुख्य सचिव, कार्यकाल की अवधि से मुक्त है। वह या तो मुख्य सचिव की हैसियत से सेवा निवृत्त होगा या फिर यहाँ से केन्द्रीय शासन में अधिक महत्वपूर्ण पद पर जायेगा।

एक और बात को भी याद रखना होगा। यह आवश्यक नहीं है कि इस पद पर सर्वाधिक वरिष्ठ सेवीवर्ग का अधिकारी ही तैनात किया जाये। सन् 1973 तक यही स्थिति थी। राजनीतिक पसंद इस पद का मापदण्ड था। अब स्थिति यह है कि केन्द्रीय स्तर का अधिकारी ही इस पर पहुँचता है और उसको वेतन भी भारत सरकार के सचिव के बराबर मिलता है।

यहाँ यह सवाल भी उठता है कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाने के बाद मुख्य सचिव की हैसियत क्या होती है? जहाँ राष्ट्रपति शासन के दौरान केन्द्र सलाहकार नियुक्त नहीं करता है, वहाँ मुख्य सचिव के पास वे सारी शक्तियाँ होती हैं जो मुख्यमंत्री की होती हैं। लेकिन सलाहकार नियुक्त हो जाते हैं तो मुख्य सचिव अपनी प्रशासकीय हैसियत में काम करता है, क्योंकि सलाहकार वरिष्ठ सेवीवर्ग के अधिकारी होते हैं।

6.4.1 मुख्य सचिव के कार्य

मुख्य सचिव के प्रमुख कार्य निम्न हैं-

1. मुख्य सचिव मुख्यमन्त्री का मुख्य सलाहकार है। इस स्थिति में वह मंत्रियों द्वारा तय किये गय प्रस्तावों को संयोजित करके उनके प्रशासकीय नतीजों पर काम करता है।
2. मुख्य सचिव, कैबिनेट का सचिव है और इस हैसियत से वह कैबिनेट की मीटिंग का ऐजेन्डा तैयार करता है, उनकी व्यवस्था करता है, इन मीटिंगों के रिकार्ड सुरक्षित रखता है, यह निश्चित करता है कि मीटिंग के फैसलों पर अमल हो और वह कैबिनेट समितियों की सहायता करता है।
3. मुख्य सचिव सिविल सेवा का राज्य में मुखिया है। इस हैसियत से वह सिविल सेवा के अधिकारी को तैनाती तथा स्थानान्तरण सुनिश्चित करता है।
4. मुख्य सचिव अपनी शक्तिशाली स्थिति के कारण सचिवालय विभागों का मुख्य समन्वयक बन जाता है। वह अंतर-विभागों में सहयोग और समन्वय स्थापित करता है। इस उद्देश्य के लिए वह सचिवालय तथा अन्य स्तरों पर बैठकें बुलाता है और उनकी अध्यक्षता करता है। बैठकों के माध्यम से वह विभिन्न अभिकरण के मध्य सहयोग और समन्वय स्थापित करता है।
5. सचिवों के प्रमुख की हैसियत से मुख्य सचिव अधिकांश समितियों की अध्यक्षता करता है और उनकी सदस्यता ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त वह उन सभी मामलों पर जो अन्य सचिवों के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं, उनकी देख-रेख भी करता है। इस अर्थ में मुख्य सचिव अवशेष वारिस है।
6. मुख्य सचिव बारी बारी से जोनल परिषद का सदस्य होता है, यदि राज्य उस परिषद का सदस्य हो।
7. वह सचिवालय भवनों पर पूरा नियन्त्रण रखता है और कौन सा स्थान किसको आवंटित करना है, यह तय करता है। वह केन्द्रीय अभिलेख खण्ड, सचिवालय, पुस्तकालय तथा आरक्षित स्थानों पर नजर रखता है। मन्त्रियों से सम्बन्धित सेवीवर्ग पर भी नियन्त्रण रखता है।

8. संकट के समय मुख्य सचिव राज्य के स्नायू केन्द्र का काम करता है। वह संकट से सम्बन्धित अभिकरणों को नेतृत्व और मार्गदर्शन देता है, ताकि वह संकटों का सामना करके समाधान खोज सके। यह स्वीकार करना होगा सूखा, बाढ़ या साम्प्रदायिक दंगों के समय वह वास्तव में सरकार का प्रतिनिधित्व करता है और सम्बन्धित अभिकरणों के माध्यम से राहत पहुँचाता है।

संक्षेप में मुख्य सचिव राज्य का व्यस्ततम अधिकारी है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने मुख्य सचिव की इस प्रकार की व्यस्त शैली को आनावश्यक बताया है। उसने लिखा, ''यह दुर्भागय की बात है कि राज्य का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्तियों के गजेट नोटिफिकेशन पर हस्ताक्षर करता है, पदोन्नतियों, स्थानान्तरणों अवकाश पर गौर करता है।'' अतः मुख्य सचिव को इन कार्यों से मुक्ति मिलनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की परम्परा सर्वप्रथम सन् 1948 में पड़ी। सत्य/असत्य
2. मैक्स बेबर ने नीति और प्रशासन के पृथकता के औचित्य को स्वीकार किया है। सत्य/असत्य
3. सचिवालय वह भवन है, जिसमें मंत्री और सचिव के कार्यालय होते हैं। सत्य/असत्य
4. मंत्री राजनीतिक प्रमुख होता है और सचिव प्रशासनिक प्रमुख। सत्य/असत्य
5. सचिव शासन का सचिव है न की मंत्री का। सत्य/असत्य
6. अनुभाग सबसे निचली संगठनात्मक इकाई है जो अनुभाग अधिकारी के अन्तर्गत रहती है। सत्य/असत्य

6.5 सारांश

शब्द सचिवालय का अर्थ है, ऐसे विभागों का भवन, जो राजनीतिक स्तर पर मंत्रियों और प्रशासन के स्तर पर सचिवों के अधीनस्थ होते हैं। सचिव मंत्रियों को उनकी नीति-निर्माण तथा विधायनी कार्यों में सहायता करते हैं।

संगठनात्मक तौर पर कार्यकारिणी विभागों के अध्यक्ष या प्रभारी पृथक एवं विशिष्ट प्रशासकीय इकाईयों का निमार्ण करते हैं, जो पदसोपानीय दृष्टि से सचिवालय विभागों के अधीन होते हैं। अधिकांशतः कार्यकारिणी विभागों को निदेशालय कहा जाता है और उनके प्रमुखों को निदेशक कहा जाता है। निदेशालय नीति को क्रयान्वित करते है। प्रत्येक सचिवालय अनेक निदेशालय के प्रभारी होते है।

मुख्य सचिव राज्य के प्रशासकीय ढ़ाँचे के प्रमुख की हैसियत से प्रशासन को नेतृत्व प्रदान करता है तथा कार्यों में समन्वय लाता है। यह अधिकारी राज्य सचिवालय का स्नायू केन्द्र है।

6.6 शब्दावली

उत्तरदायित्व- जिम्मेदारी, क्रियान्वयन- कार्य करना, दूरगामी- बहुत आगे की सोचना या करना, परामर्शदाता- सलाह देना, सेवीवर्ग- प्रशासक या अधिकारी वर्ग

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य, **6.** सत्य

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी ए0- केन्द्रीय प्रशासन।
2. महेश्वरी, एस0 आर0- भारतीय प्रशासन।
3. महेश्वरी, एस0 आर0- स्टेट गवर्नमेन्ट इन इण्डिया।

6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ0 रूपा मंगलानी।
2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति- महेन्द्र प्रताप सिंह।
4. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा
5. भारतीय लोक प्रशासन- बी0 एल0 फड़िया

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सचिवालय को संरचना को सपष्ट करते हुए सचिवालय की स्थिति और भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
2. सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग का अन्तर को स्पष्ट करते हुए नीति और प्रशासन में सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
3. नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका की चर्चा कीजिए।
4. सचिवालय और मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

इकाई- 7 राज्य योजना आयोग

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 राज्य योजना आयोग की संरचना
    7.2.1 राज्य योजना आयोग के उद्देश्य
    7.2.2 राज्य योजना आयोग द्वारा किये गये कार्य
7.3 उत्तराखण्ड की वर्तमान आर्थिक-सामाजिक स्थिति
7.4 योजना आयोग की उपलब्धियां और लक्ष्य
7.5 योजना और आर्थिक विकास पर सुझाव
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

भारत में नियोजित आर्थिक विकास सन् 1951 में प्रथम पंचवषीय योजना से आरम्भ होता है। नियोजित आर्थिक विकास का दृष्टिकोण एम0 विश्वेश्वरय्या ने अपनी पुस्तक 'प्लान्ड एकोनामी फार इण्डिया' में सन् 1934 में रखा था। बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1938 में 'नेशनल प्लानिंग कमेटी' की स्थापना की। योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च, 1950 में की गयी। यहाँ यह याद रखना होगा कि योजना आयोग का कोई उपबन्ध संविधान में नहीं है। अर्थात योजना आयोग एक संवैधानिक संस्था नहीं है। यह एक सलाहकारी संगठन है। इसके प्रारम्भिक कार्य देश के आर्थिक विकास से सम्बन्धित तार्किक परामर्श देना तथा आर्थिक तत्वों का निष्पक्ष विश्लेषण करना है। यह सब कुछ देश के संसाधनों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

राज्यों में भी केन्द्र के आधार पर राज्य योजना आयोग बनाये गये हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय योजना आयोग की सिफारिश पर उत्तर प्रदेश राज्य में सन् 1972 में राज्य आयोग की, मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में स्थापना की गयी। पृथक राज्य का दर्जा पाने के बाद उत्तराखण्ड में भी राज्य योजना आयोग अस्तित्व में आया है। इस आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता है। इसके सदस्य विभिन्न विषयों के सरकारी और गैर-सरकारी नामचीन व्यक्ति होते हैं।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्य योजना आयोग की संरचना को समझ पायेंगे।
- राज्य योजना आयोग के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
- राज्य योजना आयोग ने जो कार्य किये हैं, वह समझ पायेंगे।
- विभिन्न योजनाओं की समीक्षा की जायेगी, जिसे आप जान सकेंगे।

7.2 राज्य योजना आयोग की संरचना

राज्य योजना आयोग में एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष सहित सरकारी और गैर-सरकारी विभागों के लोग सदस्य के तौर पर होते हैं। योजना आयोग का अध्यक्ष राज्य का मुख्यमंत्री होता है जो आयोग का पदेन अध्यक्ष होता है।

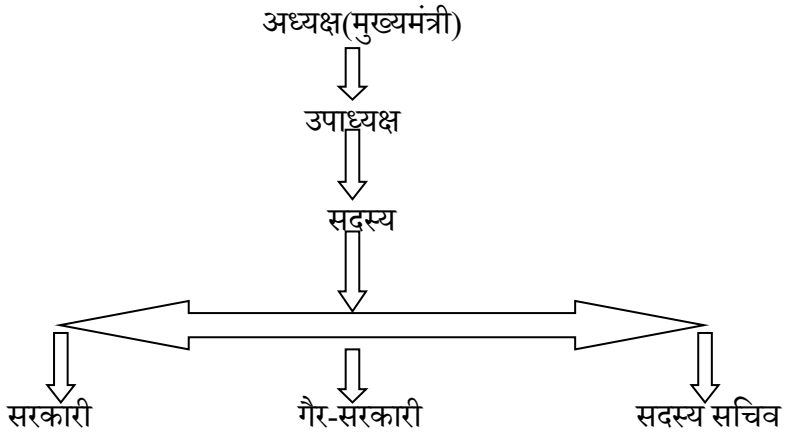

7.2.1 राज्य योजना आयोग का उद्देश्य

राज्य योजना आयोग के उद्देश्यों को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं-

1. राज्य के भौतिक, वित्तीय और मानवीय संसाधनों का अनुमान लगाना तथा उनसे सम्बन्धित उचित निर्णय लेना।
2. राष्ट्रीय योजना के उद्देश्यों और वरीयताओं के अनुसार राज्य योजनाएं तैयार करना।
3. दोनों अल्प अवधि और दीर्घ अवधि के क्षेत्रीय और अचलीय योजनाओं को स्वीकृति देना और राज्य के संसाधनों का संतुलित और प्रभावशाली उपयोग सुनिश्चित करना।
4. उन तत्वों की पहचान करना जो आर्थिक और सामाजिक विकास को रोकते हैं और उन उपायों पर विचार करना जो योजनाओं को सफलतापूर्वक पूरा कर सके ।
5. राज्य के भीतर क्षेत्रीय असंतुलन के निराकरण के लिये नीतियाँ तैयार करना।
6. वार्षिक योजना की रूपरेखा तैयार करने के लिये आवश्यक निर्देश देना।
7. पंचवर्षीय योजनाओं की तैयारी के लिये आवश्यक रूप रेखा प्रदान करना।
8. अन्य कार्य जो राज्य सरकार सौंपे।
9. संसाधनों के प्रभावकारी और संतुलित उपयोग के लिये योयजनाएं तैयार करना।
10. योजनाओं के प्रभावकारी और सफल क्रियान्वयन के लिये उचित कार्यतन्त्र को प्रस्तावित करना।
11. प्रत्येक चरण पर योजनाओं की सफलता को आंकना और उनको अधिक सफलता के लिये सुधारात्मक उपाय सुझाना।
12. आयोग को सौंपे गये मामलों पर परामर्श देना तथा/अथवा उन समस्याओं से सरकार को अवगत कराना जिनका सामना आयोग करता है।

7.2.2 राज्य योजना आयोग द्वारा किये जाने वाले कार्य

राज्य योजना आयोग द्वारा निम्नांकित कार्यों का सम्पादन किया जाता है-

1. पंचवर्षीय और वार्षिक योजनाएं बनाना।

2. राष्ट्रीय विकास योजना के अनुरूप राज्य की पंचवर्षीय योजना का खाका तैयार करना और यह ध्यान रखना कि यह राज्य सरकार के दृष्टिकोण के अनुसार हो।
3. राज्य सरकार के दृष्टिकोण को राष्ट्रीय विकास परिषद (एन0डी0सी0) के सामने रखना।
4. राज्य की पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और रणनीति को सुनिश्चित करना।
5. योजना आयोग के अध्यक्ष (मुख्यमन्त्री) तथा उपाध्यक्ष से परामर्श करके राज्य की पंचवर्षीय योजनाओं तथा वार्षिक योजना की लागत (व्यय) को अन्तिम रूप देना।
6. राज्य की पंचवर्षीय योजना तथा वार्षिक योजना का प्रारूप तैयार करना।
7. विकास विभागों को प्रारम्भिक लागत आवंटित करना।
8. विभागीय प्रस्तावों की जांच-पड़ताल करना।
9. विभागीय प्रस्तावों को अन्तिम रूप देकर योजना आयोग की स्वीकृति प्राप्त करना।
10. प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अन्त में लागत के संशोधन के लिये समायोजन प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
11. वार्षिक योजना की वित्तीय व भौतिक प्रगति के मूल्यांकन के लिये विकास विभागों की मासिक बैठकें बुलाना।
12. केन्द्रीय प्रतिभूत (स्पान्सर्स) योजनाओं का लेखा-जोखा विकास विभागों/केन्द्रीय योजना आयोग/केन्द्रीय मंत्रियों को देना और समन्वयन लाना।
13. वे कार्य करना जिसका सम्बन्ध वित्त आयोग से है।
14. जिला योजनाओं के लिये रूपरेखा तैयार करना और जिलों को लागत आवंटित करना।
15. जिला योजनाओं की जाँच-पड़ताल करना और उन्हें अन्तिम रूप देना।

7.3 उत्तराखण्ड की वर्तमान आर्थिक-सामाजिक स्थिति

उत्तराखण्ड एक नया राज्य है जो सन् 2000 में अस्तित्व में आया। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल आबादी 1,01,16,752 है। साक्षरता में इसने 9.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है। विकास के अन्य मुद्दों पर यद्यपि अभी जानकारी उपलब्ध नहीं कराई गयी हैं,लेकिन संक्षेप में सन् 2002 में प्राप्त विभिन्न आंकडों के आधार पर उत्तराखण्ड के आर्थिक और सामाजिक विकास पर एक नजर डाली जा सकती है। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि केन्द्र ने उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा दिया है, जिस कारण अपनी योजनाओं के लिये 90 प्रतिशत से अधिक राशि सहायता के रूप में केन्द्र से प्राप्त होती है। विभिन्न मुद्दों की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है-

1. **निर्धनता और मानव विकास-** उत्तराखण्ड राज्य आयोग की रिर्पोट के अनुसार 4,16,018 लोग राज्य में गरीबी की रेखा से नीचे रहते थे (सन् 2002)। लेकिन सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 29-28 लाख लोग सन् 2001 में गरीबी की रेखा से नीचे रहते थे। योजना आयोग ने इसकी पुष्टि की है। इस तरह राष्ट्रीय पैमाने पर यह आंकडे अधिक थे। यह स्थिति तब थी, जब 320 करोड़ रूपये वार्षिक, उत्तराखण्ड के प्रवासियों द्वारा भेजा जाता था। आज भी पहाड़ के लोगों के अस्तित्व का यही सबसे बड़ा आधार है।
2. **कैलोरी की दृष्टि से गरीबी रेखा-** योजना आयोग ने निम्नतम प्रति व्यक्ति, प्रति दिन कैलोरी (भोजन द्वारा प्राप्त ऊर्जा की इकाई) लेने की सीमा भारत में 2400 आंकी है। पहाड़ में भौगोलिक दृष्टि से कैलोरी लेने की सीमा 2875 प्रति दिन होनी चाहिए, लेकिन वास्तविकता यह है कि लोगों को 2400 कलोरी भी नहीं मिल पाती जो गरीबी रेखा को अंकित करती है।
3. **पेयजल की उपलब्धता-** उत्तराखण्ड में पेयजल का मुख्य स्रोत प्राकृतिक संसाधन है। गावों में पेयजल का सदियों से यही आधार है। योजना आयोग का इस ओर ध्यान भ्रामक है। जो योजनाए इस दिशा में

बनी हैं वे त्रुटिपूर्ण है। पेयजल के मौजूद स्रोत प्रायः सूख रहे है। कारण जंगल कटान है। पहाड़ी नगरों में पेयजल की स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है।

4. **विद्युत की उपलब्धता-** अनेक बार उत्तराखण्ड को विद्युत प्रदेश कहा गया है, लेकिन विद्युत प्रणाली इतनी त्रुटिपूर्ण है कि राज्य में विद्युत का संकट सदा बना रहता है। मुख्य विद्युत लाइन प्रत्येक क्षेत्र तक जाती है परन्तु अपर्याप्त विद्युत होने के कारण उसका कोई लाभ नहीं हो पाता। स्थिति यह है कि जो सन् 1985 से 88 में खम्बे लगाये गये थे उनको विद्युत सप्लाई सन् 2000 में दी गयी। दूसरे पहाड़ के गावों में विद्युत एक अनिवार्यता नहीं है , क्योंकि उसका व्यय वहन करने की लोगों में क्षमता नहीं है। स्थिति यह है कि, यद्यपि प्रत्येक गाँव तक विद्युत लाइनें पहुँची हैं, लेकिन सन् 2010 तक 50 प्रतिशत लोगों ने कनैक्शन नहीं लिये थे।
5. **उत्तराखण्ड में स्वास्थ्य की स्थिति-** स्वास्थ्य से सम्बन्धित आंकडें पूरी तरह उपलब्ध नहीं है, लेकिन जो आंकड़े उपलब्ध हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि स्थिति अन्य राज्यों से बेहतर है। कारण है साक्षरता में वृद्धि, ठन्डी जलवायु तथा रहने के परम्परागत तरीके। लेकिन कुपोषण की समस्या बनी हुई है। पुरूषों की अपेक्षा, स्त्रियाँ और बच्चे अधिक बीमार हैं।
6. **विकलांग लोगों की समस्या-** सरकारी आंकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड में कुल आबादी का 10 प्रतिशत्, लगभग 9 लाख से अधिक लोग विकलांग हैं, परन्तु गैर-सरकारी संगठनों के अनुसार यह संख्या 15,000 है। सरकारी पहुँच विकलांगों तक नहीं है, परन्तु विकलांगो को स्वयं जिला मुख्यालय आकर पंजीकृत कराना होता है। इस दिशा में सरकार का कोई नियोजित कार्यक्रम नहीं है।
7. **बच्चों के श्रम की स्थिति-** उत्तराखण्ड में न तो ऐसी फैक्ट्रीयां है और न ही ऐसे कुटीर उद्योग-धन्धे, जहाँ बच्चों से काम लिया जाता हो। अधिकांश लोग छोटे पैमाने पर कृषि पेशे से जुड़े हैं । वे ही भू-स्वामी हैं और वे ही मजदूर। ऐसी स्थिति में बच्चों से काम लेने का न तो अवसर है और न औचित्य। इसलिए इस दिशा में सरकार की न तो कोई सोच है और न कोई योजना।

   यह एक कटु सत्य है कि पहाड़ के बच्चे, जिनके माता-पिता बहुत निर्धन हैं, वे बच्चे काम करने के लिए नगरों में जाते हैं और वहाँ अक्सर होटलों में काम करते है। सरकार को इस ओर कोई ध्यान देना होगा। एक रिर्पोट के अनुसार ऐसे बच्चों की संख्या लगभग 3.5 लाख है।
8. **भौतिक पर्यावरण का मुद्दा-** भौतिक पर्यावरण का सम्बन्ध वैसे तो पूरे देश से है, लेकिन पहाड़ों से विशेष रूप से है। बाहरी लोग जो छोटे व्यापारियों या मजदूरों के रूप में पहाडों में आते हैं, पर्यावरण के प्रति गम्भीर नहीं होते। तराई तथा भाबर के क्षेत्र जो जंगलो से भरे थे बाहरी लोगों के आने के बाद कृषि भूमि में बदल गये। इससे पर्यावरण को गहरा आघात लगा। पहाड़ के जंगलों में आग लगना एक गंभीर समस्या है। पहाड़ी क्षेत्रों में खनन ने भी पर्यावरण को चुनौती दी है। झरनें, तालाब और नदियां सूखने लगे हैं। बड़े पैमाने पर भवन निमार्ण ने इस स्थिति को और गंभीर किया है। सरकार की इस दिशा में योजनाऐं हैं, परन्तु वे प्रभावी नहीं हैं। जंगलों की रक्षा करना सरकार का कर्त्वय है। लोगों के आचरण को बदलना और पर्यावरण संरक्षण में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना अनिवार्य है।
9. **कानून और व्यवस्था-** उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद अचानक राज्य में अपराधों में वृद्धि हुई है। उत्तर प्रदेश की सीमाओं से सटे नगरों में छोटे अपराधियों का इतिहास पहले से रहा है। नये विकास कार्यों ने भू, जंगल, बजरी, शराब माफिया की पकड़ को मजबूत किया है। वे प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार जमा कर राजनीति पर कब्जा करना चाहते हैं। यह स्थिति भावी उत्तराखण्ड के लिये चुनौतियों से भरी है। इस स्थिति से निपटने के लिये एक प्रभावकारी राजनीति की आवश्यकता है।

10. **बेरोजगारी और निर्धनता-** उत्तराखण्ड राज्य सरकार के आंकड़ों के अनुसार सन् 2002 तक 348675 युवा रोजगार कार्यालय में पंजीकृत थे। इनमें से सरकार ने 194 लोगों को रोजगार दिया जबकि सन् 2002 तक अन्य निजी निकायों के माध्यम से 2865 लोगों को रोजगार दिया गया। बेरोजगारी दर पूरे भारत में 2.2 से लेकर 7 प्रतिशत तक बढ रही है। उत्तराखण्ड में भी स्थिति लगभग यही है। सरकार की योजना मानव संसाधनों का विकास करके रोजगार के अवसर बढाना है। लोगों को प्राकृतिक संसाधनों से जोड़कर जिनमें भूमि, खनिज पदार्थ और पानी भी सम्मिलित है, निर्धनता का समाधान ढूँढा जा सकता है। बेरोजगारों को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में लगाकर समस्या का हल निकल सकता है।

7.4 योजना आयोग की उपलब्धियां और लक्ष्य

उत्तराखण्ड नये राज्यों में से एक है परन्तु अब 19 वर्ष पुराना हो चुका है। 19 वर्ष की उपलब्धियों को संक्षेप में बताया जा सकता है-

वृहत स्तर पर (मेकरो लेवेल) विकास वृद्धि दो अंकों में हुई है, जबकि लक्ष्य 6.8 प्रतिशत वृद्धि का था। आशा यह की जाती है कि 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान यह वृद्धि 9.9 प्रतिशत होगी। जबकि राष्ट्रीय लक्ष्य 9 प्रतिशत है। इसका कारण है कि इसने जमीन से विकास कार्यक्रम को आरम्भ किया है।

भौगोलिक-भौतिक परिस्थितियों के कारण राज्य में विशेष रूप से कृषि, उद्योग तथा संरचना के सन्दर्भ में क्षेत्रीय असमानता को स्वीकार किया गया है। सरकार की ओर से असमानता और विभाजन को सबसे बड़ी चुनौती माना गया है। यह असमानता न केवल क्षेत्रीय है, बल्कि जातीय, वर्गीय, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक भी है। योजना आयोग ने योजनाऐं बनाते समय इस असमानता को ध्यान में रखा है।

पर्यावरण संरक्षण एक दूसरी चुनौती है। यहाँ योजना आयोग ने जन भागीदारी को सुनिश्चित किया है, इसलिये सूचना के अधिकार अधिनिमय- 2005 को राज्य में कठोरता से लागू किया गया है।

योजना आयोग ने उत्तराखण्ड में सन् 2004-05 तक निर्धनता अनुपात 38.8 प्रतिशत आंका था और लक्ष्य यह था कि इस अनुपात को सन् 2011-12 तक 23.6 तक लाया जाये।

आवश्यकता इस बात की है कि कृषि वृद्धि की दर को बढाया जाय। सन् 2010 तक कृषि वृद्धि की दर 2.62 प्रतिशत आंकी गई। इसको 4 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य है। योजना आयोग ने उत्तराखण्ड में क्रान्तिकारी औद्योगिक कदम उठाये है। सन् 2010 से 2013 तक लिये एक औद्योगिक प्रस्ताव (पैकेज) देने का वायदा किया, जिसके तहत एक विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) बनाने की बात कही गई है। औद्योगिक गति को तेज करने के लिये 11वीं योजना के तहत रूड़की तक रेलवे लाइन बिछाने तथा देहली और देहरादून के बीच '6 लेन' सड़क निर्माण की बात कही गई है। विकास के लिये एक मजबूत संरचना अनिवार्य है। यहाँसबसे बड़ी भूमिका विद्युत (पावर) की है। औद्योगीकरण की यह एक अनिवार्य शर्त है। इसके लिये सरकार ने ऋण एशियन डब्लप्मेन्ट बैंक (ए0डी0बी0) से लेने की बात की है।

सन् 2002 में सिडकुल (उत्तराखण्ड सरकार उद्यम) की एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में स्थापना की गई। इसमें सरकार ने पहली बार 50 करोड़ और दोबारा 20 करोड़ का पूँजी निवेश किया। उद्देश्य था राज्य में उद्योगों का विकास। परिणाम स्वरूप देहरादून से लेकर सितारगंज तक उद्योगों का एक सिलसिला स्थापित हो गया।

अन्त में सरकार के प्रयासों से राज्य में साक्षरता दर 82 प्रतिशत हुई है। जंगलों का आकार 68 प्रतिशत से बढकर 70 प्रतिशत हुआ है। जी0डी0पी0 126593 मिलियन है। एन0डी0पी0 (आई0एन0आर0) 113420 मिलियन हुआ है।

7.5 योजना और आर्थिक विकास: सुझाव

मेजर डी0 एस0 बिष्ट द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार उत्तराखण्ड सरकार को नियोजन और विकास की ओर बड़ा सर्तक होकर आगे बढना होगा। उन्होंने अपने अध्ययन ''पावरटी प्लानिंग एण्ड डेवलपमेन्ट'' में नियोजन से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये है।

उत्तराखण्ड जैसे पहाड़ी राज्यों के लिये योजना आयोग द्वारा बनाये गये मापदण्ड पहाड़ के लोगों के लिये सामयिक नहीं हैं। वन और कृषि यहाँ के जीवन का अस्तित्व है। सदियों से यहाँ के निवासी वन और कृषि से जीवन यापन करते आये है। आधुनिकीकरण ने आत्म निर्भरता को चोट पहुँचायी है। राज्य योजना आयोग को यर्थात को ध्यान में रखकर पहाड़ के लिये योजनाऐं बनानी चाहिए।

राज्य के हितों को दृष्टि में रखकर यह स्वीकार करना होगा कि केन्द्र द्वारा बनाई गयी अनेक विकास योजनाऐं आवश्यक नहीं है कि उत्तराखण्ड के लिए लाभकारी हों। नतीजा यह होता कि जब सरकार उन योजनाओं के कार्यान्वयन में असफल होती है तो केन्द्रीय सहायता स्वतः समाप्त हो जाती है। अतः राज्य को केन्द्रीय योजनाओं को परिस्थितियों के अनुसार संशोधित करने का अधिकार होना चाहिए।

पंजाब और हरियाणा में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। कारण है हरित क्रान्ति जो केन्द्र के उदार अनुदान से सम्भव हुई है। उत्तराखण्ड को भी ऐसी सहायता मिलनी चाहिए।

विद्युत और जल संसाधनों पर, जिनका बंटवारा अन्य राज्यों को होता है, उत्तराखण्ड को इसका हिस्सा (रायलटी) मिलनी चाहिए।

उत्तराखण्ड राज्य का 60 प्रतिशत भू-भाग जंगलों से ढका हुआ है। केन्द्र द्वारा इसका हरजाना दिया जान चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्य के युवकों को कृर्षि और जंगलों से जोड़ने के लिए विशेष योजनाऐं होनी चाहिए।

उत्तराखण्ड तथा हिमांचल की परिस्थितियां लगभग एक जैसी ही हैं। मात्र इसके की हिमाचल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था उत्तराखण्ड से बेहतर है। उत्तराखण्ड में 1.50 लाख सरकारी कर्मचारी है। जबकि हिमाचल में यह संख्या 2.50 लाख है। हिमाचल ने सन् 2002 से लेकर 2010 तक 12 लाख लोगों को रोजगार देने का वायदा किया है। जबकि उत्तराखण्ड में 2 लाख लोगों को रोजगार देने की योजना है। यदि नियोजन सही हो तो अधिक लोगो को रोजगार मिल सकता है।

केन्द्र नियोजन का आधार बड़ा तार्किक है और समनवित होता है। ऐसा उत्तराखण्ड में नहीं है। राज्य योजना आयोग को चाहिए कि वो वरीयताओं को निश्चित करें, जिसके तरह राज्य की वार्षिक और पंचवर्षीय योजनाएं योजना आयोग द्वारा स्वीकृत होती है। उसी तरह जिला योजना को योजना आयोग की स्वीकृति मिलना चाहिए। ऐसा इसलिए जरूरी है कि यहाँ जिलों में प्राकृतिक संसाधनों और मानव संसाधनों की दृष्टि से गहरा अंतर है।

सरकार या गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा बनाई योजनाओं में जैव विवधता (Bio-diversity) के सिद्धान्त की अनदेखी की गयी है। इसका नतीजा यह निकला है कि भूमि उत्पादकता घटी, जल स्त्रोत सूख गये तथा वन-सम्पदा का ह्रास हुआ। पहाड़ का जीवन और संस्कृति जीव विवधता पर टिकी हुई है। योजनाऐं स्थानीय लोगों को प्राकृतिक संसाधनों से जोड़ने के लिए बननी चाहिए।

अध्ययन से यह भी पता चलता है कि शासन की ओर से विभिन्न अभिकारगों, विभागों तथा शोध संस्थाओं को पहाड़ की योजनाऐं बनाने के लिए बिना योजना आयोग से तालमेल की पूर्ण स्वतंत्रता मिली हुई है। इन संस्थाओं को विभिन्न आंतरिक और बाहरी स्त्रोतों से भरपूर पैसा मिल रहा है। जो प्रबन्धकों की जेबों में अधिक और योजनाओं में कम लग रहा है। न तो इससे युवकों को नौकरी मिलती है और न गरीबों की आय बढती है। सरकार को इन संस्थाओं की जवाबदेही सुनिश्चित करनी चाहिए।

उत्तराखण्ड में गैर-सराकरी संगठनों (एन0जी0ओ0) की बाढ़ सी आयी हुई है। एक अनुमान के अनुसार ऐसे लगभग 450 संगठन यहां कार्यरत है। उनका दावा है कि उन्होनें कम पैसे में उत्तराखण्ड का बड़ा विकास किया है। ऐसे दावे सरकार को भ्रमांक करते है। अक्सर यह संगठन जाली और उनके दावे झूठे होते हैं। सरकार को चाहिए कि या तो वे इनसे विकास कार्यों में सामंजस्य बनाए या इनकी गतिविधियों को सीमित रखे।

उत्तराखण्ड अथवा अन्य पहाड़ी राज्यों पर समाजशास्त्र के द्वारा किये जाने वाले शोधों का योजना आयोग को सदुपयोग करना चाहिए।

पहाड़ों में ईंट, लोहा, बजरी के भवन नहीं बनाना चाहिए। आर0सी0सी0 की छतों के निर्माण को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। भवन भूकम्प निराधी होने चाहिए, जिसके लिए स्थानीय परम्परागत तकनीकि का प्रयोग हो।

उत्तराखण्ड में 15793 गांव तथा 86 छोटे नगर है। प्रत्येक स्थान को पर्यटन स्थल में बदला जा सकता है। इन स्थलों में आधुनिक सुविधांए होनी चाहिए, इससे देहरादून, हरिद्वार, नैनीताल, उधमसिंह नगर, हल्द्वानी इत्यादि पर दबाव कम होगा। स्थानीय बाजारों का विकास किया जाना चाहिये, ताकि यहाँ का सामान पड़ोस के ग्रामीण इलाकों के लोग खरीद सकें या अपने द्वारा उत्पादित सामान का विक्रय कर सकें।

पहाडों में आद्योगिक विकास योजना पूरी तरह असफल हुई है। अनेक उद्योग जैसे एच0एम0टी0, हल्द्वानी, यू0पी0 टैक्सटाइल मील, फलोमोर पालिस्टर लि0, काशीपुर बहुत पहले बीमार घोषित हो चुकी हैं। दूसरे उद्योग जैसे ए0आर0सी0 सीमेंट फैक्ट्री देहरादून, यू0पी0 सरकार की कैलशियम कार्बोहाइड्रेट फैक्ट्री बंद हो चुकी है। इससे एक नतीजा यह निकलता है कि पहाड़ों में आद्योगिक विकास कृषि आधारित होना चाहिए। या वन सम्पदा आधारित लघु उद्योग स्थापित होने चाहिए।

यहाँ यह याद रखना होगा कि बावजूद इन असफलताओं के पृथक राज्य बनने के बाद उत्तराखण्ड में नई उद्योग नीति घोषित की गयी है। नई औद्योगिक नीति- 2003 के अनुसार उत्तराखण्ड के औद्योगिकरण के लिए एक नियमित ढांचा तैयार किया गया है। इस नीति के तहत उत्तराखण्ड एकीकृत औद्योगिक जागीर की स्थापना निजी संसाधनों का दोहन करके की जायेगी। सरकार निजी भागीदारी को बढावा देने के लिए तमाम सुविधाऐं प्रदान करने को तैयार है। परिणाम स्वरूप, एच0एल0एल0 तथा डाबर जैसे बड़े उद्यमियों ने राज्य में अपनी इकाइयां स्थापित की हैं। यहाँ सवाल यह पैदा होता है कि क्या यह इकाइयां सफल होंगी? या क्या इनसे स्थानीय लोगो कों रोजगार मिलेगा? यह समय बतायेगा।

उत्तराखण्ड में पारम्परिक तांबे के बर्तनों का लघु उद्योग बहुत पुराना है। सुनहरी का काम भी अच्छा होता है। गरम वस्त्रों के उद्योग के लिए भी अवसर है। योजना आयोग को इन काम-धन्धों के प्रोत्साहन के लिए काम करना होगा।

गरीबी दूर करने के लिए एक संयुक्त कार्यक्रम की आवश्यकता है। भूमि हीनों, विधवाओं, बूढों, बीमारों तथा विकलांगो के लिए योजनाऐं बननी चाहिए, चाहे उनका सम्बन्ध किसी वर्ग से हो।

अन्त में अचलीय कार्यक्रम, जल प्रबंधन और विकास, वन पर्यावरण तथा वन जीवन, सिचाई तथा बाढ़ नियंत्रण इत्यादि पर भी ध्यान देना होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. गैर-सरकारी संगठनों का संक्षिप्त रूप एन0जी 0ओ0 है। सत्य/असत्य
2. उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा मिला हुआ है। सत्य/असत्य
3. भारत में नियोजित आर्थिक विकास 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना से आरम्भ होता है सत्य/असत्य
4. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1938 में नेशनल प्लानिंग कमेटी की स्थापना की। सत्य/असत्य
5. योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च 1950 में की गयी थी। सत्य/असत्य
6. उत्तराखण्ड का 60 प्रतिशत भूभाग जंगलों से ढका है। सत्य/असत्य

7.6 सारांश

राज्य योजना आयोग एक गैर संवैधानिक संस्था है। यह एक सलाहकार संगठन है। इसकी संरचना राष्ट्रीय योजना आयोग पर आधारित है। इसके मौलिक कार्य राज्य के आर्थिक विकास से सम्बन्धित तार्किक परामर्श देना तथा आर्थिक तत्वों का निष्पक्ष विश्लेषण करना है। यह सब कुछ राज्य के अपने संसाधनों तथा केन्द्र से मिलने वाले अनुदानों या अन्य वाह्य ऋण इत्यादि को ध्यान में रखकर किया जाता है।

उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद यहाँ पर भी योजना आयोग की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य राज्य के भौतिक, वित्तीय और मानवीय संसाधनों का आंकलन करके राज्य में योजनाऐं तैयार करना है। इसको यह भी देखना कि योजनाऐं ऐसी हो, जो राष्ट्रीय वरीयताओं के अनुरूप हो। यह वार्षिक योजना और पंचवर्षीय योजनाओं को ध्यान में रखकर राज्य की योजनाओं को बनाता है।

उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा मिला हुआ है। राज्य योजना आयोग ने राज्य के विकास के लिए कुछ अच्छे काम किये है। विशेषरूप से राज्य में ओद्योगिक गतिविधियां तेज हुई हैं। सिडकुल कारपोरेशन ने बाहरी उद्यमियों की सहायता से देहरादून से लेकर सितारगंज तक उद्योगों का जाल बिछाया है। राज्य सरकार योजना आयोग की सहायता से राज्य में भौतिक संरचना तैयार करने में सफल हुई है। योजनाओं से सम्बन्धित विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि राज्य के सामने बहुमुखी विकास की अनेक चुनौतियां हैं, जिनका सामना कुशल नेतृत्व तथा योग्य प्रबन्धन कर सकता है।

7.7 शब्दावली

गरीबी रेखा- वह पैमाना जिसका आंकलन योजना आयोग समय-समय पर करता है तथा जिसके नीचे रहने वाले अति निर्धन लोग होते हैं। स्पेशल एकोनामिक जोन- औद्योगिकरण के लिए बनाया गया एक विशेष आर्थिक क्षेत्र जैसे- उत्तराखण्ड में सिडकुल। बायो डाइवर्सीटी- विभिन्न जीव जिसके अन्तर्गत पूरे जीवन का ताना-बाना, संस्कृति, परम्परांए इत्यादि आती है।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य, **6.** सत्य

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तर प्रदेश, संजय कुमार।
2. पृथक पर्वतीय राज्य, नवीन चद्र ढोडियाल।
3. उत्तराखण्ड टूडे, खड्ग सिंह वल्दिया।

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ऐडरेस आफॅ एन0 डी0 तिवारी इन दि 52 मीटिंग आफॅ नैशनल डेवलपमेंट कौंसिल, 9 दिसम्बर, 2006, एन0डी0 तिवारी।
2. स्टडी रिर्पोट आन दि प्लानिंग आफ़ उत्तराखण्ड (वेबसाइट), मेजर डी0एस0 बिष्ट।

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्य योजना आयोग के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

इकाई-8 राज्य में प्रशासनिक सुधार

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 प्रशासनिक सुधार आयोग
    8.2.1 प्रशासनिक सुधार आयोग के उद्देश्य
    8.2.2 प्रशासनिक सुधार आयोग की मुख्य सिफारिशें
8.3 आर्गनाईजेशन एण्ड मेथड्स विभाग (O & M)
    8.3.1 ओ0 एण्ड एम0 का प्रशासकीय सुधार विभाग में विलय
8.4 प्रशासकीय सुधारों का दर्शन
8.5 उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार
8.6 प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु विचारार्थ विषय
8.7 प्रशासनिक सुधार आयोग: प्रतिवेदन
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

प्रशासकीय सुधार आज लोक प्रशासन का एक चर्चित विषय है, लेकिन यह भारत में बहुत देर से पहुँचा है। प्रशासन को गतिशीलता प्रदान करने का प्रयास, सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, भारत में एक लम्बे समय से जारी है। अनेक ऐसी संस्थाएं अस्तित्व में आयी, जिन्होंने प्रशासकीय कार्यों की कार्य पद्धति और तरीकों या क्रमबद्धता, संगठनों, हस्तान्तरण, कर्मचारी जरूरतों, योजना क्रियान्वयन इत्यादि के बारे में गहन छानबीन की। ऐसा पचास के दशक में काफी कुछ किया गया। इसके पंचवर्षीय योजना अभिलेखों में समय-समय पर प्रशासनिक कमजोरियों और उनको दूर करने के उपायों की समीक्षा की गयी, क्योंकि योजनाओं की असफलता का कारण प्रशासनिक अक्षमता और असफलता थी। इसका अर्थ है कि भारत में प्रशासनिक सुधारों की दिशा में काफी प्रयास किये गये।

लेकिन एक लम्बे समय तक प्रशासनिक सुधारों की दिशा में एक तार्किक, वैज्ञानिक और क्रमबद्ध प्रयास नहीं किया गया और जो कुछ किया गय वह एक असम्बद्ध (Unconnected), बिखरा हुआ और अत्यधिक निराश परिवर्तनीय प्रयास था। नेताओं ने कभी कमियों की गहनता से न तो विश्लेषण किये और न ही उनके निदान का ऐसा प्रयास किया गया, जिससे प्रशासन को अर्थपूर्ण गतिशीलता मिल सकती हो। कारण यह था कि स्वतंत्रता के बाद भारत ऐसी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक उलझनों में फँसा रहा कि उसने प्रशासनिक सुधारों की ओर अधिक ध्यान ही नहीं दिया।

किसी भी विकासशील देश में सरकार का ध्यान प्रशासनिक आधुनिकता की ओर कम और आर्थिक तथा सामाजिक सुधारों की ओर अधिक होता है। अधिक महत्वाकांक्षी होने के कारण वे राजनीतिक सुधारों की ओर भी अधिक ध्यान नहीं देते। होता यह है कि जब आर्थिक और सामाजिक ढांचा टूटने लगता है और संकट का समय आता है प्रशासनिक सुधारों की ओर ध्यान जाता है।

उत्तराखण्ड एक नया विकासशील राज्य है और सन् 2000 में अस्तित्व में आया है। इसे बहुत कुछ उत्तर प्रदेश से विरासत में मिला। इसके सारे उच्च अधिकारी पूर्व में उत्तर प्रदेश में कार्यरत थे और सब अनुभवी थे। भारत भी प्रशासनिक सुधारों के अनेक चरणों से गुजरा। उसके अनुभव का लाभ भी उत्तराखण्ड को मिल सकता है। वैसे भी छोटे राज्य प्रशासन को अधिक गतिशीलता और सुगमता दी जा सकती है। पृथक उत्तराखण्ड राज्य की मांग का एक बड़ा कारण प्रशासनिक औचित्य ही था। उत्तर प्रदेश एक बड़ा प्रदेश है जो प्रशासनिक अक्षमता या विषमता और क्षेत्रीय असंतुलन को बढावा देती है। उत्तराखण्ड के अस्तित्व में आने के बाद राज्य में प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया, जिसने भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग- 1960 के आधार पर राज्य के लिए विस्तार से संस्तुतिया की है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरानत आप-

- प्रशासनिक सुधारों का अर्थ और महत्व समझ पायेंगे।
- प्रशासनिक सुधार आयोग की मुख्य सिफारिशों से परिचित होंगे।
- प्रशासन के अंदर लाये जाने वाले सुधारों में संस्थाओं/खण्डों/विभागों की भूमिका को समझ पायेंगे।
- उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन तथा नीतिगत एवं सामान्य संस्तुतियों से अवगत होंगे।

8.2 प्रशासनिक सुधार आयोग

उत्तराखण्ड के प्रशासनिक सुधार आयोग की संस्तुतियों को जानने से पूर्व भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग (ए0आर0सी0) को जानना जरूरी है। आजादी के प्रथम दस वर्षों में यह महसूस किया गया कि भारत को एक नई आर्थिक और सामाजिक दिशा देने के लिए अतीत की प्रशासनिक लीक से हटकर एक नई सोच के साथ और बढ़ना होगा तभी राजनीतिक विकास भी संभव था और एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य पूरा हो सकता था। अतः प्रशासकीय संरचना और कार्यपद्धति से सम्बन्धित अनेक अध्ययन किये गये, लेकिन वे इतने विस्तृत और वैज्ञानिक नहीं थे जो प्रशासन में क्रमिक सुधारों को सुनिश्चित करते। प्रशासन एक लम्बे समय तक राष्ट्रीय दृष्टि और योजनाओं एवं कार्यक्रमों को साकार करने में अपर्याप्त रहा।

8.2.1 ऐ0आर0सी0 के उद्देश्य

5 जनवरी, 1966 को प्रशासकीय सुधार अस्तित्व में आया। आयोग का काम निम्न क्षेत्रों पर विचार करना था- भारत सरकार के कार्य तंत्र और उसकी कार्य पद्धति, प्रत्येक स्तर पर नियोजन के कार्य तंत्र, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध,वित्तीय प्रशासन, कर्मचारी प्रशासन, आर्थिक प्रशासन, राज्य स्तर पर प्रशासन, जिला प्रशासन और नागरिकों की शिकायतों के निवारण की समस्याऐं।

8.2.2 ए0आर0सी0 की मुख्य सिफारिशें

यहाँ पर हम राष्ट्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग (1966) का उल्लेख कर रहे हैं। यह एक अत्यधिक प्रतिष्ठित लोगों की टीम थी जिसमें जन प्रतिनिधि, संसद सदस्य, सेवी वर्ग के लोग तथा विशिष्ट क्षत्रों के लोग थे। इस आयोग का उद्देश्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में एक संतुलित, यथार्थवादी और एकीकृत दृष्टिकोण अपना कर खोज करना या विस्तृत सिफारिशें करना था।

प्रशासकीय सुधार आयोग ने 20 प्रतिवेदन प्रस्तुत किये, जिनके आधार पर 1581 विस्तृत सिफारिशें की गयी। यह सिफारिशें कृषि को छोड़ कर अन्य सभी विषयों से सम्बन्धित थी। मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी -

1. प्रशासकीय सुधारों का एक विभाग बनाया जाये जो स्वयं सेवा को आधारभूत चरित्र के प्रशासकीय सुधारों के अध्ययन तक सीमित रखे।
2. 2ओ0 एण्ड एम0 (आर्गेनाईजेशन एण्ड मैथड्स) विभागों में खड़ा किया जाये तथा ओ0 एण्ड एम0 इकाइयों के कर्मचारियों को आधुनिक तकनीकों से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाये। इन ओ0 एण्ड एम0 की इकाइयों को प्रशासकीय सुधारों से सम्बन्धित परामर्श और निर्देश दिये जायें।
3. केन्द्रीय सुधार अभिकरण में एक विशिष्ट सेल (घटक) बनाया जाये ताकि वह भावी सुधारों के बारे में सोच सके।
4. कार्यपद्धति, भर्ती व्यवस्था तथा संगठनात्मक संरचना के सम्बन्ध में केन्द्रीय सुधार अभिकरण शोध परक होना चाहिए।
5. प्रशासकीय सुधारों का विभाग प्रत्यक्ष रूप से उप-प्रधानमंत्री के अन्तर्गत रहना चाहिए।
6. शक्तिशाली, स्वायत्त और पेशेवर संस्थांए अनिवार्य हैं जो प्रशासकीय सुधारों और नवीनीकरण को मौलिक सोच दे सके।
7. किसी मंत्रालय में नीति-निर्माण प्रक्रिया में दो से अधिक मंत्री नहीं लगने चाहिए।
8. केबिनेट सचिव की भूमिका एक समन्वयक तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। प्रधानमन्त्री या राज्यों में मुख्य मन्त्री का मुख्य सेवी सलाहकार होना चाहिए। वह मन्त्रिमण्डल और समितियों को भी सलाह दे सकता है।
9. सभी मुख्य निर्णय लिखित में हो, विशेष रूप से जहाँ सरकार की नीति स्पष्ट न हो या जहाँ सचिव और मन्त्री किसी महत्वपूर्ण मामले पर एकमत न हों।
10. कर्मचारी वर्ग एक पृथक विभाग के अन्तर्गत रखा जाये, जिसका एक पृथक सचिव हो जो कैबिनेट सचिव के निर्देशन में कार्य करें।
11. आई0ए0एस0 के लिए एक कार्यात्मक क्षेत्र बनाया जाये। अर्थात भूमि राजस्व प्रशासन, दण्डाधिकारिक (मेजिस्टेरियल) कार्य और राज्य में नियमतिक (रेग्यूलेटरी) कार्यों के लिए।
12. सरकार को एक स्पष्ट और दूरगामी राष्ट्रीय नीति का निर्माण सेवी वर्ग के प्रशिक्षण के लिए करना चाहिए।
13. मंत्रियों या शासन के सचिवों के विरूद्ध शिकायतों के निबटारे के लिए केन्द्र और राज्य स्तर पर एक सत्ता होनी चाहिए। इस सत्ता को 'लोकपाल' कहा जाये। दूसरे अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतें सुनने के लिए केन्द्र और राज्यों में 'लोक आयुक्त' होने चाहिए। लोकपाल का पद भारत के मुख्य न्यायाधीश के स्तर का होगा और इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह से पांच वर्ष के लिए करेगा।
14. राष्ट्रीय प्रशासनिक आयोग की सभी सिफारिशों के आधार पर राज्य प्रशासनिक आयोग परिस्थितियों के अनुसार राज्य प्रशासन के लिए सिफारिशें करेंगे।

8.3 आरगानाईजेशन एण्ड मेथड्स विभाग (ओ0 एण्ड एम0)

यहाँ हमें प्रशासकीय सुधारों के सम्बन्ध में ओ0 एण्ड एम0 पर भी प्रकाश डालना होगा। स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक सुधारों से सम्बन्धित अनेक समितियां गठित की गयी। इनमें सन् 1947 में ऐ0डी0 गोरवाला ने मेथड्स आर्गेनाइजेशन और ट्रेनिंग से सम्बन्धित निदेशालय की स्थापना का सुझाव दिया जो एक अभिकरण का काम कर सके। सन् 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना ने यह सिफारिश की, कि केन्द्रीय सरकार का एक ओ0 एण्ड एम0 होना चाहिए। जो विभिन्न मंत्रालयों के कर्मचारी खण्डों के साथ पूर्ण सहयोग से काम करे। सन् 1953 में प्रसिद्ध लोक प्रशासक पाल0 एच0 ऐपलबी ने भी अपनी प्रसिद्ध रिर्पोट ''सर्वे ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया'' में भी ऐसे ही एक संगठन की ओर इशारा किया जो प्रशासकीय संरचनाओं, प्रबन्धन और कार्य पद्धति को नई दिशा दे सके। परिणाम स्वरूप मार्च सन् 1954 में ओ0 एण्ड एम0 डिवीजन अस्तित्व में आ गया और कैबिनेट सचिवालय से सम्बद्ध कर दिया गया।

ओ0 एण्ड एम0 ने ऐसे अध्ययन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाया है जो अभिलेखों के वैज्ञानिक प्रबन्धन के तौर-तरीकों, विभागीय नियमों के सरलीकरण, प्रतिवेदनों, आधिकारिक विवरणों और तथ्य एवं समस्याओं के औपचारिक ब्योरों, शासकीय समस्याओं और संकटों के लिए अनिवार्य है।

ओ0 एण्ड एम0 डिवीजन सामन्य हित की समस्याओं का विशिष्ट अध्ययन करके विभिन्न विभागों को सलाह देता है। यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक विभाग के भीतर अपना ओ0 एण्ड एम0 होना चाहिए और उसे प्रशासकीय समस्याओं के लिए पर्याप्त उत्तरदायित्व और अधिकार मिलने चाहिए। साथ में यह भी महसूस किया गया है कि यदि ओ0 एण्ड एम0 को प्रशासन के क्षेत्र में एक अहम भूमिका अदा करनी है, तो उसके कार्य को सरकारी कार्यपद्धति तक सीमित न रखा जाये। ओ0 एण्ड एम0 का कार्य वास्तव में विभागों और मंत्रालयों के संगठनों और संरचनाओं का विश्लेषण करना है और शासन को उसके सर्वोच्च स्तर तक परामर्श देना है।

8.3.1 ओ0 एण्ड एम0 का प्रशासकीय सुधार विभाग में विलय

सन् 1964 में गृह मंत्रालय के अन्तर्गत प्रशासकीय सुधार विभाग अस्तित्व में आया। इसका उद्देश्य भी प्रशासकीय व्यवस्थाओं और शासनतंत्र के तौर-तरीकों और नीतियों का अध्ययन करना था। अतः इसे उसी वर्ष ओ0 एण्ड एम0 डिवीजन के साथ जोड़ दिया गया। इस तरह ओ0 एण्ड एम0 संरचनात्मक और संगठनात्मक अध्ययनों का केन्द्रीय भाग बन गया। बाद में ओ0 एण्ड एम0 ने अपना कार्य क्षेत्र बढा दिया। उसने कर्मचारी वर्ग (परसोनेल) विभाग से मिलकर कर्मचारी वर्ग पर अनेक अध्ययन किये।

अन्ततः प्रशासकीय सुधार विभाग तथा ओ0 एण्ड एम0 के सहयोग से प्रशासनिक सुधार आयोग (भारत) ने कर्मचारी वर्ग पर अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की। कर्मचारी वर्ग का एक पृथक विभाग बनाया जाये जो एक स्थायी सचिव के अधीन हो, लेकिन जो कैबिनेट सचिव के निर्देशन में काम करें। इस विभाग के निम्न कार्य एवं उत्तरदायित्व होने चाहिए-

1. केन्द्रीय और अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बन्धित प्रत्येक मुद्दे पर कर्मचारी वर्ग के लिए नीतियों का निर्माण करना तथा इनके क्रियान्वयन का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना।
2. प्रतिभा की खोज करना, उच्चतर प्रबन्धन के लिए कर्मचारी वर्ग का विकास करना तथा उच्चतर पदों पर नियुक्तियों की समय-समय पर परीक्षा करना।
3. मानव शक्ति की योजना तैयार करना, प्रशिक्षण देना और पेशा सम्बन्धी विकास तथा कर्मचारी वर्ग के विकास के लिए विदेशी सहायता कार्यक्रम तैयार करना।
4. व्यक्तिक तौर पर कर्मचारी प्रशासन में शोध ।

5. कर्मचारी तंत्र की शिकायतों को दूर करने के लिए अनुशासन और कल्याणकारी काम करना।

8.4 प्रशासकीय सुधारों का दर्शन

प्रशासकीय सुधार एक प्रक्रिया है, जिसे अनेक चरणों में विभाजित किया जा सकता है। समस्याओं के आंकलन से लेकर, नीतियों के क्रियान्वयन तक। उद्देश्य है, सुधार। जेराल्ड ई0 कैडेन के अनुसार प्रशासनिक सुधारों में निम्न बातें सम्मिलित हैं-

1. प्रशासकीय परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति जागरूकता।
2. लक्ष्य, रणनीति और कार्यविधि का निर्माण।
3. सुधारों का क्रियान्वयन।
4. सुधारों का मूल्यांकन वस्तुगत दृष्टि से।

उस समय प्रशासनिक सुधार अनिवार्य हो जाते है, जब प्रशासन अपने कर्मचारी वर्ग को संतुष्ट नहीं कर सकता है, आश्वस्त नहीं हो पाता कि समस्याऐं क्या हैं और कहाँ है? नागरिकों की शिकायतें दूर नहीं कर सकता तथा संगठन में चलने वाली गतिविधियों के बारे में उचित ढंग से सोच नहीं पाता।

प्रभावकारी सुधार लाने के लिए अनिवार्य है कि उन पर नजर रखी जाये और उनका मूल्यांकन किया जाये।

8.5 उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार

उत्तराखण्ड एक नवोदित राज्य है जो उत्तर प्रदेश से पृथक होकर सन् 2000 में अस्तित्व में आया। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड की कुल आबादी 1,01,16,752 है। सन् 1815 से लेकर सन् 1947 तक उत्तराखण्ड एक पृथक प्रशासनिक इकाई बना रहा। इस दौरान उत्तराखण्ड के शासक मूल रूप से प्रशासक थे अर्थात अंग्रेजी शासनकाल में उत्तराखण्ड को एक प्रशासनिक इकाई माना गया। अंग्रेजी प्रशासक बैटिन से लेकर रेम्जे तक, उत्तराखण्ड से सम्बन्धित अनेक प्रशासनिक सुधार किये गये। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि जहाँ स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेज प्रशासक उत्तराखण्ड के विकास के प्रति जागरूक रहे। वहीं स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासकों (उ0प्र0) ने इस क्षेत्र को अनदेखा कर दिया। उनकी उदासीनता से उत्तराखण्ड पूरी तरह पिछड़ गया। प्रशासनिक अधिकारी यहाँ आने से घबराते थे और यहाँ स्थानान्तरित होकर आते तो तैनाती को सजा समझते थे। जहाँ एटकिन्सन जैसे प्रशासक ने उत्तराखण्ड का चप्पा-चप्पा खंगालकर महान शोध ग्रन्थ लिखे, वहाँ हम भारतीय प्रशासकों को देखने के लिए तरसते थे।

इस मानसिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तराखण्ड में पृथक राज्य आन्दोलन आरम्भ हुआ। मांग की गयी कि उत्तर प्रदेश से अलग एक राज्य के रूप में या केन्द्र शासित स्वायत्त प्रदेश के रूप में विकास का प्रयोजन होने चाहिए। विकास के आयोजन स्थानीय जनता के हित के लिए, अंचल विशेष के उद्धार, सुधार और उन्नयन के लिए हो। योजनाओं का दायित्व पुराने अधिकारियों, कर्मचारियों की अदला-बदली से बने प्रशासनिक तंत्र पर न होकर नये लोगों से नवगठित नये 'काडर' पर हो। परिणाम स्वरूप, उत्तराखण्ड के गठन के बाद एक नई परिकल्पना के साथ राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना की गयी।

8.6 प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु विचारार्थ विषय

उत्तराखण्ड शासन के संकल्प, 223 दि0 10 मार्च, 2006 के अनुक्रम में प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु निर्धारित विचारार्थ विषय के अन्तर्गत जिन विषयों एवं बिन्दुओं पर विचार किया जाना था, उनका विवरण निम्नवत् है-

1. **उत्तराखण्ड शासन का संगठनात्मक ढ़ाँचा-**
   - राज्य स्तर से ग्राम स्तर तक विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों को दक्ष एवं संवेदनशील बनाना।
   - विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों का पुनर्गठन एवं सुदृढ़िकरण- ताकि वे कार्यकुशल, मितव्ययी, संवेदनशील स्वस्थ, निष्पक्ष और सार्थक व्यवस्था दे सकें।
   - मानव संसाधन का इस प्रकार से नियोजन कि कम से कम मानव संसाधन में अधिकतम एवं गुणवत्तापूर्ण कार्य किया जा सके।
   - ऐसे क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना, जिनमें शासकीय हस्तक्षेप को समाप्त किये जाने की आवश्यकता हो।
   - प्रत्येक प्रशासनिक इकाई को आधुनिक तकनीकि एवं सूचना प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में पुनर्गठित करना।
   - विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में परस्पर समन्वय हेतु उपाय।
2. **शासन/प्रशासन में नैतिकता-**
   - शासकीय व्यवस्था में भ्रष्टाचार उन्मूलन एवं पारदर्शिता लाने हेतु उपाय।
   - मेहनती एवं ईमानदार अधिकारी/कर्मचारियों के उत्पीड़न को समाप्त करना एवं जहाँ आवश्यक हो कार्यकारी विवेकाधिकार को सीमित करना।
   - शासकीय प्रक्रिया को सरलीकृत करते हुए अधिक जनप्रिय बनाना एवं मनमानी से निर्णय लेने पर प्रतिबन्ध की व्यवस्था।
   - राज नेताओं एंव अधिकारियों के बीच के सम्बन्धों में सद्-भाव और परामर्श की प्रक्रिया में सरलता।
   - राज नेताओं एवं अधिकारियों के लिए आचरण संहिता।
3. **कार्मिक प्रशासन को चुस्त दुरूस्त बनाया जाना-**
   - भर्ती, प्रशिक्षण एवं उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त अधिकारियों, कर्मचारियों की तैनाती की व्यवस्था।
   - अधिकारियों/कर्मचारियों में कार्य उत्पादकता बढाए जाने एवं उनके मूल्यांकन की व्यवस्था।
   - अधिकारियों की क्षमता विकास हेतु प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था।
   - अधिकारियों/कर्मचारियों के द्वारा किये गये कार्यों के वास्तविक मूल्यांकन को आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में देखना।
4. **वित्तीय प्रबंधन व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण-**
   - परियोजनाओं और कार्यक्रमों के लिए समय से बजट अवमुक्त करने की प्रक्रिया का सरलीकरण।
   - राजकीय धन का समय से सदुपयोग किये जाने को सुनिश्चित करने के लिए व्यवस्था।
   - विभिन्न स्तरों पर होने वाले व्ययों का लेखा-जोखा रखने की व्यवस्था।
   - प्रमाणीकरण के लिए आन्तरिक आडिट की व्यवस्था, वाहन आडिट पद्धति का विकास, जिससे कार्यक्रमों के प्रभाव का सही मूल्यांकन हो सके।

5. राज्य से ग्राम स्तर तक प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करने हेतु उपाय-

- प्रत्येक स्तर पर वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकारों का आवश्यकतानुसार प्रतिनिधापन।
- प्रशासनिक इकाइयों में समुचित सामन्जस्य एवं समन्वय स्थापित किये जाने के सम्बन्ध में उपाय एवं उनकी प्रभावकारिता के मूल्यांकन की व्यवस्था।

6. जिला प्रशासन को प्रभावी बनाये जाने हेतु उपाय-

- जिला स्तर पर अधिकारियों की कार्य-प्रणाली को अधिक उत्तरदायी एवं संवेदनशील बनाना और जनता की शिकायतों पर ध्यान देने के लिए उसे सक्षम बनाना।
- जन समस्याओं एवं उत्पीड़न के मामलों के समाधान को सर्वोच्च प्राथमिकता देना।
- जिला प्रशासन को वर्तमान परिवेश में आधुनिक एवं अधिक प्रभावी बनाये जाने और उसी क्षेत्र स्तर तक सर्वसाधारण को सुविधाएं मुहैय्या कराने की व्यवस्था बनाने के लिए सक्षम होना।
- विकास कार्यों में जनसहभागिता को सम्भव बनाना।

7. स्थानीय निकाय/पंचायतीराज संस्थाऐं-

- प्रत्येक स्थानीय निकाय एवं पंचायतीराज संस्था को सक्षम/उत्तरदायी बनाये जाने के सम्बन्ध में वर्तमान व्यवस्था में संशोधन करना।
- जन सुविधाओं की व्यवस्था को सुदृढ़ करने में जनसहभागिता की व्यवस्था।
- संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के अनुरूप कार्यविधि अपनाये जाने के सम्बन्ध में कठिनाइयों का निवारण।

8. सामाजिक पूँजी न्यास एवं सहभागी लोक सेवा वितरण पद्धति-

- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं समाज के अन्य पिछड़े वर्गों तथा विषम भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के सामाजिक आर्थिक विकास की व्यवस्था की लिए रणनीति का निर्धारण।
- जन सहभागिता के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर राजकीय कार्यक्रमों की प्रभावकारिता बढाना।
- विकास कार्यक्रमों के निर्धारण एवं क्रियान्वन में जन सहभागिता।

9. जन केन्द्रित प्रशासन-

- व्यक्ति निरपेक्ष, जवाबदेह एवं पादरर्शी प्रशासन की व्यवस्था।
- सरकारी कार्यों में विलम्ब को दूर करने हेतु उपाय तथा लोक सेवा वितरण पद्धति को चुस्त करना।
- प्रशासन में जन सहयोग प्राप्त करने के सम्बन्ध में उपाय।
- सिटिजन चार्टर तैयार किये जाने हेतु विभागों का चिन्हीकरण।
- समय-समय पर जनता के सुझाव प्राप्त किये जाने हेतु कार्य पद्धति।
- सूचना का अधिकार सभी को सरलता से उपलब्ध कराना।

10. ई-गर्वनेन्स को प्रोत्साहन-

- शासकीय कार्यालयों में विज्ञान एवं तकनीकि का अधिकतम उपयोग किये जाने की व्यवस्था।

- शासन, प्रशासन में गुणवत्ता सुधार किये जाने हेतु आधुनिक पद्धति से जवाबदेही की व्यवस्था।

11. आपदा प्रबन्धन-

- भूकम्प के दृष्टिकोणो से उत्तराखण्ड अति संवेदनशील जोन में अवस्थित होने के कारण भूकम्प के समय सुरक्षात्मक उपाय एवं बचाव के सम्बन्ध में विशेष योजनाएं बनाना।
- उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचलों में अत्यधिक संख्या में होने वाली सड़क दुर्घटनाओं की संख्या को कम करने के सम्बन्ध में उपाय।

8.7 प्रशासनिक सुधार आयोग: प्रतिवेदन

26 जनवरी, 2007 को प्रशासनिक सुधार आयोग, उत्तराखण्ड ने अपना प्रतिवेदन शासन के समक्ष रखा, जिसमें नीतिगत एवं सामान्य संस्तुतियां की गयी थीं। संक्षेप में मुख्य संस्तुतियां निम्नवत हैं, जो उत्तराखण्ड शासन द्वारा जारी संकल्प के तहत विषयों और बिन्दुओं की रोशनी में है।

1. उत्तराखण्ड शासन का संगठनात्मक ढ़ाँचा

- सामान्य प्रशासन विभाग के अधीन प्रशासनिक सुधार कार्यक्रमों को आगे बढाने के लिए प्रशासनिक सुधार अनुभाग का गठन होना चाहिए।
- कार्मिकों की संख्यात्मक वृद्धि के स्थान पर नई तकनीकि गुणात्मक वृद्धि की जाये।
- सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने हेतु विभागीय मैनुअल, हस्त प्रतिकाओं एवं मार्गनिर्देशिकाओं का अद्यावधिक एवं सरल रूप, सुदृढ़ अभिलेखागार प्रणाली, विभागीय मैनुअल वेबसाइट पर हो।
- निर्माण कार्य/भण्डार क्रय के लिए ऑन लाइन डिजिटिलाइजेशन प्रक्रिया अपनाई जाये।
- जनपद एवं विभागाध्यक्ष स्तरीय कार्य सचिवालय स्तर पर न हो व क्षेत्रीय अधिकारियों को पर्याप्त अधिकार दिये जाएं।
- राजस्व अधिकारियों को विकास योजनाओं के पर्यवेक्षण एवं समन्वय का दायित्व सौपा जाये।
- योजना निर्माण के लिए ग्राम पंचायत से लेकर जिला नियोजन समिति तक बैठकों की समय सारिणी हो।
- न्याय पंचायतों को विकास कार्यों से सम्बन्धित शिकायत सुनने तथा निराकरण करने हेतु अधिकार दिये जायें।
- नियोजन विभाग द्वारा विभागीय योजनाओं की मासिक समीक्षा हो।
- सचिव/अपर सचिव केवल सचिवालय के कार्य देखे, विभागाध्यक्ष के नहीं।
- एक ही प्रकार के कार्य तद्षयक दक्षता वाले विभाग द्वारा ही किये जायें।
- पटवारी तथा कानूनगो को एक सहायक उपलब्ध कराया जाये।
- मुख्य विकास अधिकारी द्वारा समस्त विकास योजनाओं की मासिक समीक्षा की जाये।
- मंत्रीगण तथा अधिकारियों के बीच अविलम्ब कार्य विभाजन किया जाये।
- विभागीय कार्य वितरण में वक्तव्यों का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण हो।

- विचलनों के माध्यम से दिये गये आदेशों की मुख्यमंत्री स्तर पर सामयिक समीक्षा हो।
- विभागों के बीच समन्वय प्रक्रिया हो।
- जिलाधिकारी संस्था का सुद्धढ़ीकरण हो।

2. शासन/प्रशासन में नैतिकता

- लोकायुक्त के कार्य क्षेत्र व शक्तियों में वृद्धि हो।
- भ्रष्टाचार प्रकरणों में दण्ड की त्वरित तथा प्रभावी व्यवस्था हो।
- सेवा संघों में भ्रष्टाचार उन्मूलन व नैतिक आचार संहिता व्यवस्था हो।
- योजनाओं में पारदर्शिता के लिए सार्वजनिक सूचना प्रारूप तैयार किया जाये।
- कार्मिक उत्पीड़न का निराकरण हेतु राज्य तथा मण्डल स्तर पर व्यवस्था हो।
- नियमों और प्रक्रियाओं का सरलीकरण हो।
- प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण प्रक्रिया हो।
- राजनेताओं, राज्य कर्मचारियों तथा समस्त संस्थाओं हेतु नैतिक आचार संहिताएं हो।

3. कार्मिक प्रशासन को चुस्त दुरूस्त बनाया जाना

- मण्डल स्तर पर आयुक्त तथा शासन स्तर पर सचिव कार्मिक की अध्यक्षता में श्रेणी-3 तथा 4 की भर्ती पर निगरानी हेतु टास्क फोर्स की स्थापना की जाये।
- भर्ती साक्षात्कार में मनोवैज्ञानिक जांच की व्यवस्था हो।
- अनावश्यक पद समाप्त हो।
- कार्मिक प्रशिक्षण नीति का प्रशासनिक अकादमी की सहायता से निर्धारण हो।
- कार्मिकों के कार्य मूल्यांकन हेतु सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक बिन्दु निर्धारण हो।
- प्रत्येक अधिकारी के लिए प्रशिक्षण-कलैण्डर की व्यवस्था हो।

4. आपदा प्रबंधन

- तत्काल प्रतिक्रिया के साथ-साथ कुशल प्रबन्धन को प्राथमिकता देना।
- नागरिक सुरक्षा संगठन का उपयोग बचाव एवं राहत कार्यों हेतु किया जाना।
- भूकम्प अवरोधी निर्माण के प्रशिक्षण एवं कार्यन्वयन का दायित्व ग्रामीण क्षेत्र में ग्रामीण अभियंत्रण सेवा तथा नगरीय क्षेत्र में लो0नि0वि0 को देना।
- भवन निर्माण में भारतीय मानक ब्योरो का पालन करना।
- प्रत्येक कार्यालय/संस्था स्तर पर भूकम्प बचाव योजना तैयार करना।
- नियंत्रण कक्षों को आधुनिक संसाधन प्रदान करना।
- अभियन्ताओं, ठेकेदारों तथा राज मिस्त्रियों को प्रशिक्षित करना।
- पुराने भवनों का रेट्रोफिटिंग करना।
- प्रशासन का सैनिक/अर्द्धसैनिक बलों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना।

5. राज्य से ग्राम स्तर तक प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करना

- वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकारों का प्रति निधायन।
- लेखा परीक्षा का सुदृढ़ीकरण करना।
- जिलाधिकारी, मुख्य विकास अधिकारी तथा खण्ड विकास अधिकारी के अधिकारों/दायित्वों में वृद्धि करना।
- विकास कार्यों का परिषदों/अर्द्ध-सरकारी/गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से अधिक से अधिक क्रियान्वयन करना।
- अर्न्तविभागीय समन्वय सुदृढ़ीकरण करना।
- सूचना संसार प्रौद्योगिकी का अधिकाधिक उपयोग करना।

6. जिला प्रशासन को प्रभावी बनाये जाने हेतु उपाय

- सचिवों के स्थान पर विभागाध्यक्षों तथा पर्यवेक्षणीय अधिकारियों को निरीक्षण दायित्व सौंपा जाये।
- जन सेवा सम्बन्धित प्रार्थना पत्रों तथा पत्राचार पत्रों के लिए सरलतम आधार पत्र हो।
- जिलाधिकारी एवं विभागाध्यक्षों के मध्य संवादशीलता में वृद्धि हो।
- जिलाधिकारी द्वारा दूरस्थ केन्द्रों पर तथा मुख्य विकास अधिकारी द्वारा विकास खण्डों पर शिविरों का आयोजन करना।
- विकास कार्यक्रमों में लाभार्थी समूहों की अधिकाधिक सहभागिता हो।
- न्याय पंचायत तथा नगरीय वार्ड समितियों को स्थानीय समस्याओं के निदान का उत्तरदायित्व सौंपा जाये।
- कार्यालयों में प्राप्त शिकायतों के वर्गीकरण, अनुश्रवण व निस्तारण की व्यवस्था हो।

7. स्थानीय निकाय/पंचायती राज्य संस्थाएं

- ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत के मध्य कार्यों एवं दायित्वों का विभाजन करना।
- न्याय पंचायतों का पुनर्गठन करना। न्याय पंचायत केन्द्रों का न्याय पंचायत कार्यालय, किसान सेवा केन्द्र का, जन मिलन के रूप में विकास करना। न्याय पंचायतों को न्यायिक तथा विकास कार्यों सम्बन्धी शिकायतों/वादों के निस्तारण हेतु शुल्क प्राप्त करने का अधिकार हो।
- नगरीय तथा ग्राम पंचायतों में वार्ड मेम्बर एवं वार्ड कमेटी बने।
- प्रभावी नागरिक अधिकार पत्र व्यवस्था हो।
- प्रत्येक स्तर पर विकास एवं नियामन सम्बन्धी कार्यों में अधिकाधिक जन सहभागिता हो।

8. जन केन्द्रित प्रशासन

- व्यक्ति निरपेक्ष, पारदर्शी व जवाबदेह सेवाऐं हो।
- स्व-कार्यशीलता व सु-सेवा की अवधारणा का विकास हो।
- पत्रावलियों में निर्णय के स्तर पर एक सीमित हो। अर्पूण टिप्पणियों एवं आख्याओं की प्रवृत्ति उदारता की श्रेणी में हो।

9. ई-गर्वनेन्स को प्रोत्साहन

- प्रदेश में सूचना संचार प्रौद्योगिकी का चरणबद्ध कर्यान्वयन हो। व्यापक योजना बने, छोटे-छोटे राज्यों को हाथ में लेकर तेजी से बढाया जाये।
- सूचना संचार प्रौद्योगिकी को लागू करने के लिए मुख्य सचिव की अध्यक्षता में गठित समिति में सचिव, सामान्य प्रशासन व एन0आई0सी0 के प्रतिनिधि सम्मिलित हो। सचिव, सूचना प्रौद्योगिकी की अध्यक्षता में समन्वय समिति बने।
- भारत सरकार एन0आई0सी0 की योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये।
- सभी विभागों तथा संस्थाओं द्वारा एक ही प्रकार के साफटवेयर का उपयोग हो। विभागों में पूर्ण सामान्जस्य हो।
- जन-सामान्य के लिए सरल सूचना संचार प्रोद्योगिकी भाषा व शब्दावली का प्रयोग हो।

कुल मिलाकर राज्य प्रशासकीय सुधार आयोग ने लगभग 300 संस्तुतियां की हैं जो सिद्धान्त एक आदर्श प्रशासकीय व्यवस्था की ओर इशारा करती है। उत्तराखण्ड अभी एक विकासशील राज्य है जो अनुभव की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इस प्रक्रिया में प्रशासकीय सुधार आयोग की अहम भूमिका हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 5 जनवरी 1966 को प्रशासनिक सुधार आयोग अस्तित्व में आया। सत्य/असत्य
2. पाल एपलाबी की रिपोर्ट सर्वे ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया है। सत्य/असत्य
3. उत्तराखण्ड नए राज्य के रूप किस सन् में अस्तित्व में आया?
4. प्रशासनिक सुधार विभाग किस मंत्रालय के अन्तर्गत और किस वर्ष अस्तित्व में आया?

8.8 सारांश

विकासशील देश में सरकार का ध्यान प्रशासनिक सुधारों की ओर तभी जाता है जब आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था चरमराने लगती है। तब एहसास होता है कि प्रशासनिक आधुनिकीकरण कितना महत्वपूर्ण है। छोटे या नये राज्य देश के अनुभव से सीखते हैं, उत्तराखण्ड ऐसा ही राज्य है। यह राज्य सन् 2000 में गठित हुआ। इसके लगभग सभी उच्च अधिकारी अनुभवी थे जो पहले उत्तर प्रदेश 'काडर'में कार्यरत थे।

प्रशासन को अत्याधिक आधुनिक बनाने का उत्तरदायित्व प्रशासनिक सुधार आयोग (भारत सरकार) पर है। उसने सन् 1960 से लेकर अब तक अनेक प्रशासनिक सुधारों के लिए सुझाव दिये है। इन सुझावों में एक सुझाव ओ0 एण्ड एम0 का है जो विभागों, संगठनों के भीतर काम करता है। यह एक अध्ययन एवं शोध का काम करता है और अपने निष्कर्षों से विभागों और मंत्रालयों को लाभ पहुचाता है।

उत्तराखण्ड का अपना प्रशासनिक सुधार आयोग है। शासन ने इस आयोग हेतु निर्धारित अधिकारादेश/विचारार्थ विषय के अन्तर्गत अनेक बिन्दुओं पर विचार करने एवं संस्तुतियां प्रदान करने का आग्रह किया। आयोग ने 26 जनवरी, 2007 दो भागों में अपना प्रतिवेदन नीतिगत एवं सामान्य सुस्तुतियों के अन्तर्गत सरकार को प्रस्तुत किया।

8.9 शब्दावली

ओ0एण्ड0एम0- आर्गेनाईजेशन एण्ड मैथड्स (डिवीजन), जिसका काम प्रशासकीय अध्ययन और खोज करके विभागों या मंत्रालयों को दिशा निर्देश देना है।

ई-गर्वनेन्स- यह परिकल्पना कि शासन करना एक इंजीनियरिंग है । सूचना संचार प्रौद्योगिकी इसका आधार है।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सन् 2000, **4.** गृह मंत्रालय के अंतर्गत सन् 1964 में

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय प्रशासन- अवस्थी एण्ड अवस्थी।
केन्द्रीय प्रशासन- ए0 अवस्थी।
स्टेट गवर्नमेंट इन इंडिया- एस0 आर0 माहेश्वरी।

8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हमारा संविधान- सुभाष कश्यप।
2. भारत का संविधान- डी0 डी0 बसु।
3. उत्तराखंड शासन की रिपोर्ट -संतुलित समयबद्ध विकास ,5वीं वर्षगाँठ।

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशासनिक सुधार आयोग के सुधारों की विवेचना कीजिये।
2. उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार पर निबन्ध लिखिए।
3. आपदा प्रबन्धन के बारे में मुख्य संस्तुतियां क्या हैं?